कहानीकार फणीश्वरनाथ 'रेणु'

राज रैना

सीमांत प्रकाशन

६२२, कूचा रूहेला खाँ,

दरियागंज, नई दिल्ली ११०००२.

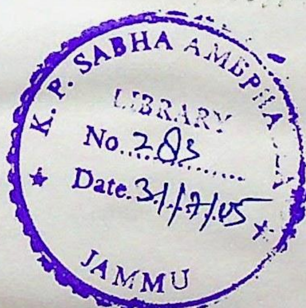


कहानीकार
फणीश्वरनाथ
'रेणु'



कहानीकार फणीश्वर नाथ 'रेणु'

(फणीश्वर नाथ 'रेणु' की कहानियों का अध्ययन)



राज रैना

सीमांत प्रकाशन

९२२, कूचा रूहेला खाँ,
दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

प्रकाशक :
नरेन्द्र नाथ 'सोज़',
सीमांत प्रकाशन,
६२२, कूचा रूहेला खाँ,
दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२



आवरण : राजेश डिडन,



मूल्य : बीस रुपये



प्रथम संस्करण : १९७८



मुद्रक :
तिलक प्रिंटिंग प्रेस,
बाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६

विषय-सूची

पूर्वराग

समकालीन हिन्दी कहानी में रेणु एक संस्था हैं। यों हर महान कृतिकार ऐसा होता है पर रेणु की तरह शायद ही किसी और लेखक का उदय ऐसी धूम से हुआ हो। कारण यह नहीं कि रेणु ने नए कथांचलों को हिन्दी में लाकर पाठक को चौंकाने की विधि अपनाई हो, बल्कि उन्होंने भाषा और मुहावरे को नयी अर्थछायाएँ देकर उसे आज के जीवन और चिन्तन की गुत्थियाँ समझना आसान कर दिया।

कहानीकार रेणु पर, इस दृष्टि से, यह अपनी किस्म का पहला शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है।

कुछ समय पूर्व, जब यह काम हाथ में लिया गया, फणीश्वरनाथ रेणु कश्मीर में बहुत कम, लेकिन जागरूक पाठकों के प्रथम रुचि के लेखक थे। केवल 'प्रतिभा' गोष्ठी में इन्हें पढ़ा और चर्चित किया जाता था। प्रस्तुत लेखिका का इस गोष्ठी के साथ परोक्ष सम्बन्ध था। पाठ्यक्रम में इन्हें, तब रखा नहीं गया था। शायद पाठ्यक्रम निर्धारित करने वाले अध्यापक स्वयं इनसे परिचित न थे। आज परीक्षार्थी को इनकी कोई रचना पढ़नी ही पड़ती है और फिर आज का अध्यापक समकालीन रचना से अधिक सम्पृक्त रहता है क्योंकि पाठ्यक्रम में समकालीन लेखक लिए जा रहे हैं। रेणु भी लिए जा रहे हैं। कितना भी अनुदार अध्यापक हो, 'आँचलिक' लेबल लगाकर ही सही, उसे रेणु की नव्यता स्वीकारनी पड़ती ही है।

इस दृष्टि से, प्रस्तुत प्रबन्ध की लेखिका के काम का महत्त्व बढ़ जाता है। उन्होंने अपेक्षाकृत 'आगामी' महत्त्व का बीड़ा उठाया।

उनकी कई कठिनाइयां थीं। शोध की पारम्परिक सीमाओं में रहना था (अर्थात् विषय से अधिक विषयान्तर को प्रबन्ध में अधिक समय और स्थान देना था) हर अवधारणा को उद्धरणों से पुष्ट करना था (और इस तरह प्रमाणित करना था कि वे स्वतंत्र चिन्तन की जुर्रत नहीं कर सकतीं) और स्वयं लेखक की अपने लेखन के बारे में राय जाननी थी। उनकी सद्यः प्रकाशित कहानियों की टोह में लगे रहना था।

मुझे सन्तोष है कि यह प्रबन्ध हर दृष्टि से सम्पूर्णता की प्राप्ति का प्रयास करता है। बेकार और घिसी पिटी अवधारणाओं की अपेक्षा यह संक्षिप्त ही हो लेकिन इसमें मौलिक दृष्टि से लेखक को देखा गया है। 'आंचलिक' कहानी पर छपी सस्ती पाठ्यपुस्तकीय आलोचना की सहायतता नहीं ली है। मेद्य डॉलाजी के शब्दजाल के बावजूद हमारे विश्वविद्यालयों का शोध 'वैज्ञानिक' यहीं जैसा कि घोषित किया जा रहा है। उसमें एक सत्य के निरावरण की अपेक्षा दस तथ्यों के आंकलन को अधिक उपयुक्त माना जाता है। गुरु—निर्देशकों की इच्छा अनिच्छा से शोध की सम्भावनाएँ और सीमाएँ बनती हैं। टिप्पणियों और अनुक्रमणिकाओं से पुस्तक का संतुलन बनाए रखना होता है।

रेणु पर संदर्भ ग्रन्थों का अभाव स्वाभाविक है क्योंकि अभी वे लिख रहे हैं और उन पर होने वाला शोध अन्तिम नहीं हो सकता। यह एक तरह से प्रस्तुत लेखिका के लिए वरदान था। उन्हें स्वयं ज्यादा सोचना पड़ा और जिस भी निर्णय पर वे पहुंची हैं स्वयं उनका अपना है। रेणु पारस्परिक शल्य (फिक्शन) तथा गल्यालोचना की हदों में नहीं बंधते। 'आंचलिक' कहकर छोड़ देना आसान है। लेकिन अभी भी 'आंचलिक' का भी कोई सर्वमान्य स्वरूप और परिभाषा निश्चित नहीं हो पाई है। लेखिका के 'आंचलिक' की विश्लेषण-पूर्ण व्याख्या करने की रीति अपनाई है जिससे सत्यों की खोज प्रधान हो गई है और एक सर्वथा नई दृष्टि का निर्धारण अनिवार्य हो गया है।

हिन्दी विभाग
गवर्नमेण्ट कॉलेज, बेमिना, श्रीनगर (कश्मीर)
जनवरी, '७८

रतनलाल शान्त

परिच्छेद एक

"कत्था सुनने का सौक"

कहानी में पारम्परिक कौतूहल; विषय विस्तार,
बिंब और छितरे प्रतिबिंब,
पूर्वापर कहानियों में मूलभूत तत्व-समानता,
आख्यान और उपनिषद्; संस्कृत में आख्यायिका,
कथा और आख्यायिका; आख्यायिक-दण्डी,
दोनों केवल गद्यकाव्य,
इतिहास, दंतकथाएँ और उनका ह्रास,
हिन्दी कहानी : आधुनिक पश्चिमी कहानी,
प्रेमचन्द की परिभाषा; जैनेन्द्र : ग्रंथि समाधान,
यशपाल : समाज चेतना; अज्ञेय : व्यक्ति की अधूरी कहानी,
प्रभावान्विति और औत्सुक्य,
नव आन्दोलन और नव परिभाषाएँ,
नामवरसिंह : कहानीपन और अन्तर्विरोध की पकड़,
कहानी,
नयी कहानी : समाज बोध की ओर झुकाव,
ग्राम कथा बनाम नगर कथा,
आंचलिक कथा : समग्र घनीभूत संवेदना,
आंचलिक कथाओं के उपयुक्त क्षेत्र : गांव ।

परिच्छेद एक

कत्था सुनने का सौक

कहानी में पारम्परिक कौतूहल :

फणीश्वरनाथ रेणु की सबसे अच्छी और सुप्रसिद्ध कहानी 'तीसरी कसम' में हीरामन गाड़ीवान हीराबाई के कहानी सुनने के कौतूहल को समझ कर धीरे से हँसता है। उसका रोम-रोम पुलकित है, टप्पर के भीतर से आती हुई फेनू गिलासी आवाज को सुनकर और वह आवाज़ उससे पूछती है :

—तब ? उसके बाद क्या हुआ मीता ?

—इस्स ! कत्था सुनने का बड़ा शौक है आपको ? और हीरामन उसे महुआ घटवारिन की कहानी सुनाता है, यह पूर्णियां जिले में शताब्दियों से प्रसिद्ध और लोकप्रिय लोक-कहानी है और इसे सुनने का शौक हीराबाई को उसी तरह है जैसे आज से सदियों पहले इस और ऐसी दूसरी कहानियों को सुनने के लिए चौपालों पर दिन-भर के थके मांदे किसान-मजदूर प्रगल्ब बालक चंचल युवतियों और अभिजात स्त्रियां इकट्ठे होकर सुनती। शौक या दूसरे शब्दों में उत्सुकता भारत में ही नहीं, और केवल लोक कहानियों में ही नहीं एक महत्वपूर्ण तत्व हुआ करती थी। उत्सुकता की रक्षा के लिए कहानीकार या गल्पकार घटनाओं में तारतम्य बनाये रखता था। संसार के सब प्रसिद्ध साहित्यों में जो भी प्राचीनतम उपलब्ध हुआ है उसमें उत्सुकता एक प्रधान गुण रहा है। इस उत्सुकता को बनाये रखने के लिए विभिन्न समयों पर विभिन्न अभिप्रायों से काम लिया जाता था। कभी घटनाएं किसी दैवी प्रेरणा से प्रेरित होकर कदम-कदम पर अप्रत्याशित मोड़ लेती और कभी पात्र ही अपने या दैवदत्त गुणों से अति मानवीय या देवप्राय हो उठते और इस तरह चमत्कारों की झड़ी लग जाती। लेकिन हर स्थिति में पाठक का ध्यान और उत्सुकता बनाये रखी जाती। सामान्यत: उत्सुकता की रक्षा के ये चेतन प्रयत्न हुए मिलते हैं—भारतीय आख्यानों में, कहानी के बीच में से कहानी निकलती और इस तरह एक बड़ा कथावृक्ष कई शाखाओं के साथ फला-फूला होता। पश्चिम में, कहानियों के सुनने के शौक की चर्चा आख्यान के आरम्भ में ही होती। कथा उत्सुक राजा अफसाना-गो व्यक्तियों को क्रमशः और

निरन्तर नियुक्त करता रहता। कभी-कभी तो ऐसे राजे इस निरन्तरता के ढूंढने को सहन न करते और घोषणा के अनुसार ही कथाक्रम निरन्तर निभा न पाने वाले अफसाना-गो को मौत के घाट उतरवा देते। कभी-कभी ऐसी कहानियों को शहनशाहों की विलास भरी रातों के साथ सम्बन्ध किया जाता और कई सौ या सहस्त्र काम-निशाओं में सुनाई गई कहानियाँ बाद में संकलित कराई जातीं। तो यह सिद्ध होता है कि "क्या" सुनने का यह शौक कहानी की सबसे प्रथम विशेषता है, साथ ही यह विशेषता आज तक कहानियों में बनी रही है इसलिए यह कहानी की शाश्वत विशेषता कहला सकती है।

कहानी पिछले हजारों वर्षों के इतिहास में काफी विकसित हुई और काफी बदली लेकिन उत्सुकता का अंश सदा सर्वदा उसमें विद्यमान रहा। यह और बात है कि यह उत्सुकता कभी-कभी कौतूहल का रूप ले लिया करती थी। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने कौतूहल की उपस्थिति वाली कहानियों को न केवल सफल बताया है बल्कि कहानी में कौतूहल के क्रमिक विकास की रूपरेखा भी खींची है—"सफल कहानियों में कौतूहल का आविर्भाव अनेक बार अनेक अंगों पर होता है पर उसमें हर बार उत्तर विभेद होता चलता है अर्थात् कौतूहल में तीव्रता बढ़ती रहती है···। इस तरह चरमसीमा की ओर जाने वाली कौतूहल जनक घटनाओं की दृष्टि का रूप प्रायः इस प्रकार का होगा[1] :

चरम सीमा

उत्सुकता

तृ० कौतूहल

उत्सुकता

द्वि० कौतूहल

उत्सुकता

प्रथम कौतूहल

संघर्ष

प्रारम्भ

डा० लक्ष्मीनारायण लाल आधुनिक हिन्दी कहानी के सफल रचनाकार हैं और उन्होंने कहानी और कौतूहल का ऐसा विश्लेषण किया है। विश्व-

---

१. कहानी कला की समीक्षा, हिन्दी कहानियों के शिल्प विधि का विकास : डा० लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ ३२७।

कहानी साहित्य में हम कई ऐसे कहानीकारों को पाते हैं जिन्होंने कौतूहल को ही कहानी का केन्द्र बिन्दु माना और ख्याति पाई। इनमें अमरीकी कहानीकार ओ हेनरी, फ्रांसीसी कहानीकार गी-द-मोपासां, रूसी कहानीकार चेखव और मैक्सिम गोर्की, अंग्रेजी कहानीकार एच० जी० वेल्ज और हिन्दी कहानीकार प्रेमचन्द, कौशिक आदि गिनाये जा सकते हैं।

विषय विस्तार

कहानी केवल कौतूहल ही है यह निष्कर्ष भी हम नहीं निकाल सकते। केवल फणीश्वरनाथ रेणु के हीरामन के अछूते और कुंवारे मानस की इस स्वाभाविक प्रतिक्रिया का उल्लेख आवश्यक था। हीरामन बीसवीं शती का भारतीय ग्रामीण है और "कत्था" सुनने के शौक को समझ मन ही मन हीराबाई को दाद देता है। वास्तव में यह शौक उसे है फिर कहानी केवल कौतूहल ही नहीं और आज तक के लिखे गये कहानी साहित्य को देखकर तो कहानी ही सबसे विविध साहित्य विधा लगती है क्योंकि कहानी हमारे जीवन और परिवेश से सम्बन्धित किसी भी विषय या पक्ष पर लिखी जा सकती है। एक कुत्ते की मौत से लेकर चन्द्रलोक में जाने की स्वप्न स्थिति तक की परिधि में किसी भी विषय पर।[१] यही वैविध्य हमारे लिए बाधा बन जाता है और हम कहानी को आसानी से परिभाषित नहीं कर सकते। आज कहानी की विविधता इतनी है कि हम "शब्दार्थौ सहितं काव्ये" या "वाक्यं रसात्मकं काव्यं" जैसी कोई भी संगुफित परिभाषा नहीं दे सकते। फिर भी कहानी सम्बन्धी कुछ प्रसिद्ध परिभाषाएं हम दे सकते हैं।

बिंब और छितरे प्रतिबिम्ब

कहानी में जीवन का एक पहलू हो, प्रभाव की एक ही इकाई हो, यह अधिकांश आलोचक मानते हैं। अंग्रेजी के आलोचक श्री हडसन मानते हैं कि कहानी में एक ही विचार होना चाहिये जो प्रसारित और विकसित होते हुए

---

१. हिन्दी कहानियों की शिलपविधि का विकास : लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ ३२।

एक तर्क सम्मत निष्कर्ष तक पहुंचे।[१] इसी तरह एक अन्य आलोचक[२] यह मानते हैं कि कहानी पाठक के हृदय पर प्रभाव की एक इकाई ही डाले और इस तरह सम्पूर्ण कहानी का प्रभाव केवल एक बिन्दु पर केन्द्रित हो सके। इसी तरह कई आलोचकों ने इसे जीवन की एक फांक या एक स्नैप शार्ट कहा है। जो भी हो, सभी इस बात पर सहमत हैं कि कहानी जीवन की एक झांकी-भर देती है, सम्पूर्ण जीवन हमारे सामने प्रस्तुत नहीं करती। प्रसिद्ध रूसी कहानीकार चेखव ने इसीलिए कहानी के बारे में कहा था कि "कहानी विशाल समुद्र के उन छितरे प्रतिबिम्बों का नाम है जो तट पर बिखरे टूटी बोतल के टुकड़ों में दिखाई देते हैं।" इस लघुता के कारण ही कई आलोचकों ने कहानी को समय की सीमाओं में भी बांध दिया। हम पश्चिमी कहानी के जन्मदाता एडगर ऐलन पो की परिभाषा ही लें तो कहानी केवल आधे घण्टे में पढ़ने की चीज है।[३] इसी तरह एच० जी० वेल्ज कहानी की सीमा आध घण्टा निश्चित करते हैं।[४] वास्तव में इस प्रकार की परिभाषाएं कहानी को नहीं बांध सकती। कहानी को पठन-काल की सीमाओं में बांधने वाले आलोचकों में एक ओर जे० टी० शिपले भी हैं।[५] वास्तव में पठन-काल के साथ

---

1. A short story must contain one and only one informing idea and that the idea must be worked out to its logical conclusion with absolute singleness of aim & direction of method—W. H. Hudson, An Introduction to the study of literature, page 454.
2. A true short story differs from the Novel in its essential unity of impression—in a far more exact precise use, the word short story has a unity which a novel cannot have— Encyclopaedia, Britannica, Vol. XXI, page 580.
3. A short story is a Prose narrative requiring from half an hour to one or two hours in its perusal—The works of Edgar Allen Poe.
4. A story should be of no greater length than enables it to be read in some thirty minutes.
5. A short story is a narrative, short enough to be read in a single sitting written to make an impression on the reader excluding all that does not forward the impression complete and final in itself—The quest for literature by J. T. Shipley, page 299.

कहानी के आकार को जोड़ने की प्रवृत्ति का कारण वही है जो कई आलोचकों के अनुसार कहानी के जन्म का। यह सर्वविदित है कि आधुनिक रूप की छोटी कहानी पश्चिम में औद्योगीकरण के बाद से अधिकाधिक लिखी जाने लगी। औद्योगीकरण के बाद से पश्चिमी समाज में समय का अधिकाधिक उपयोग होने लगा। मशीनों ने जहाँ मनुष्य की सुविधा के लिए काफी कुछ किया वहाँ मनुष्य की सारी सभ्यता को ही मशीनी बना डाला। मनुष्य को कम से कम समय मिलने लगा। जब वह अपनी प्रतिदिन की आवश्यकताओं के बारे में सोचता। लेकिन सभ्यता के मशीनीकरण के साथ-साथ ही मनुष्य को मनोरंजन की आवश्यकता भी महसूस होने लगी और उसके लिए उसे अवकाश कुरेद कर निकालना पड़ा। दूसरे मनोरंजनों की बात जाने दें। साहित्य में गल्प एक सामान्य मनुष्य को भी बहला सकती है इसलिए उपन्यास को यह जिम्मेदारी निभानी पड़ी। उपन्यास प्राचीन युगों के महाकाव्य का उत्तराधिकारी था और जीवन के यथासम्भव विस्तृत पक्ष को छू लेता था। इसलिए उसका आकार भी काफी बड़ा होता। कहानी ऐसी स्थिति में बहुत कम आई और व्यस्त मनुष्य कहानी पढ़ने के लिए थोड़ा-सा अवकाश निकाल पाता। कई आलोचकों के अनुसार इसी आवश्यकता ने कहानी को जन्म दिया। इसीलिए सर-हुग-वालपोल जैसे आलोचक कहानी में शीघ्रता चाहते हैं।[१] इसी शीघ्रता को दृष्टि में रखते हुए और भी कई आलोचक कहानी की और परिभाषाएँ देते हैं। कहानी के रचना विधान में कहानी के आदि, मध्य और अन्त पर जोर देते हैं और उसका अपेक्षित या अनपेक्षित लेकिन शीघ्र अन्त चाहते हैं।[२]

पूर्वापर कहानियों में मूलभूत तत्वों की समानता

कहानी की इन परिभाषाओं से होते हुए हम इस स्थिति तक आते हैं कि कहानी के विभिन्न तत्वों की आवश्यकता के आधार पर विभिन्न युगों में

---

1. A short story should be a story, a record of things full of incident and accident swift movement unexpected develpment leading through suspence to a climax and a satisfying denouement.
2. A story is like a horse race. It is the start and finish that count most.—Sedgewich and Dominovitch, Editor, Novel and Poetry.

विभिन्न आलोचकों के मतों का अध्ययन करें। प्राचीन काल से ही कहानी में कौतूहल तत्व के साथ-साथ घटना तत्व को प्रधानता मिली। आज से शुरू करके कहानी के इतिहास में जितना हम पीछे जायें उतना घटना तत्व महत्त से महत्तर और महत्वपूर्ण से अधिक महत्वपूर्ण होता जाता है। वास्तव में कौतूहल तो घटनाओं के तारतम्य से ही जगता था, सुरक्षित रखा जाता था और पोषित होता था। प्राचीन 'परी" सम्बन्धी या दूसरे "दैत्य-दानव" या "अतिमानव" सम्बन्धी मिथक (myth) घटनाओं पर ही निर्मित होते थे। आगे चलकर घटनाएँ कहानी के कलेवर का मूल और प्रमुख भाग बन गयीं, घटनाएँ कहानी का ढांचा बनाती, जिस पर चरित्र-चित्रण भाषा-शैली आदि से सम्पूर्ण कहानी के शरीर की रचना हुआ करती। आलोचकों ने कहानी के घटनाओं वाले इसी कलेवर को कथावस्तु अथवा कथानक कहा और कहानी के तत्वों में सर्वप्रथम स्थान इसे ही दिया। उन्होंने कहानी की परिभाषा ही कथानक के आधार पर निर्धारित की।[1] प्रसिद्ध अंग्रेज़ी कहानीकार स्टीवनसन का अनुभव इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। वे कथानक को लेकर उसमें चरित्र फिट करना ही कहानी लिखने का एक तरीका समझते हैं। इसके अतिरिक्त कहानी में चरित्र-चित्रण वर्णन, कथोपकथन, वातावरण, भाषा, शैली, उद्देश्य आदि कहानी के तत्व माने गये और इन्हीं के अनुसार विभिन्न आलोचकों ने कहानी की विभिन्न परिभाषाएँ स्थापित की हैं। आज के आलोचक केवल यह मानते हैं कि बीसवीं शती में विकासमान कहानी के ये मूलभूत तत्व अवश्य विद्यमान हैं लेकिन इनकी प्रकृति बदल गई है और हमारे जीवन में इनकी स्थिति के परिवर्तन के साथ-साथ ये भी बदल गये हैं। आज की भी कहानी कला में कथावस्तु है, घटनाएँ हैं, संघर्ष हैं, लेकिन अब इनका सम्बन्ध मन मस्तिष्क से हो गया है, इसके विकास में कौतूहल और जिज्ञासा की तीव्रता है, लेकिन अब इसका स्तर भावुकता से हटकर बौद्धिक हो गया है। आज की भी कहानी कला में आश्चर्य वृत्ति मिलती है लेकिन इनमें पूर्ण स्वाभाविकता लाने का आग्रह है। यहां चरमसीमा भी है लेकिन आज की चरमसीमा

---

1. There are, so far as know, three ways, and three ways only of writing a story. You may take a plot and fit characters to it or you may take a character and choose incidents and situations to develop it.

Graham Balfows Life of Stevenson, ii, page 169.

इस घटना अथवा संयोग पर नहीं व्यक्त हुई है कि कोई स्त्री अपने खोये हुए आभूषणों को हैट-बाक्स में एकाएक पा जाती है वरन् एक ऐसी स्त्री की मनोदशा की चरमसीमा है जो एकाएक अपनी स्मृति में अपने खोये हुए आनन्द और शांति को पा जाती है।"[1] इस तरह आज की कहानी में भी प्राचीन कहानी की मूलभूत बातें मिलती हैं। इसमें घटनाएँ तथा घटनाओं का घटाटोप होता ही है।[2] केवल इसमें निर्वाह की भिन्नता इसमें चरित्रों के कारनामे होने ही चाहिये। केवल यह कारनामे चरित्रों पर थोपे गये नहीं लगने चाहिये बल्कि उनके स्वाभाविक कार्य कलाप से उद्भूत होने चाहिये।[3] प्राचीन कहानियों में वातावरण कौतूहल की रक्षा में सहायक होता और इसलिए कहानी का वातावरण अधिकतर आतंकित चित्रित किया जाता। वह या तो सुहाना मधुर हंसता खिलता और अतः प्रेमोत्तेजक हुआ करता या सनसनाती हवा, गुप अंधेरे, सुनसान जंगल और वीरानियों से त्रस्त ही चित्रित किया जाता और खलनायक कथानक के स्वाभाविक विकास में बाधा डालने के लिए सहायक चित्रित होता। लेकिन कहानी के विकास के साथ-साथ वातावरण में ऐसी भयानक सुन्दरता ही महत्वपूर्ण न रही और हर स्थिति के अनुकूल वातावरण बनता गया और बदलता भी रहा। आलोचकों के अनुसार स्थानीय रंजन या अनुकूल स्थानीय वातावरण की उत्पत्ति चरित्र

---

1. The modern story tellers have changed their nature. There is still adventure but it is now an adventure of the mind. There is suspence by it is less a nervous suspense than an emotional and intellectual suspence, there is a climax but it is not a climax of a woman who discovers her lose jewels in the hatbox, but the climax of the woman who discovers her lost happiness in a memory.

—Seon O Faolin, The short story, page 164

2. It is a series of crises related to each other and bringing about a climax.—E. M. Forster.

3. One of the best definitions ever given of the technique of fiction is that action reveals character and that character demonstrates itself in action and action is only another word for incidents. — Seon O Faolin, pp. 165.

ग्रौर घटना का ताल-मेल बिठाते हैं ग्रौर मनुष्य की ग्राहक इन्द्रियों के लिए कहानी को सुगम बनाते हैं ।[1]

ग्राख्यान ग्रौर उपनिषद

भारतवर्ष में गल्प, इतिहास ग्रौर पुराण बहुत देर तक एक दूसरे के पर्याय रहे । भारत का प्राचीन इतिहास जितना पुराणों के ग्रर्ध सत्य ग्राख्यानों में मिलता है उतना ग्रौर कहीं नहीं मिल सकता । पुराणों में इतिहास का ग्राधार होता था लोक विश्वास या दन्तकथा, ग्रौर कल्पना के ग्राधार पर ग्राख्यान की रचना होती । जो कुछ लिखा जाता वह एक शुद्ध साहित्यिक हुग्रा करता । साहित्यिक कृतित्व की दृष्टि से पुराणों का ग्राख्यान या उपनिषदों में बिखरी कथाएँ ग्राह्य हैं लेकिन उनका शुद्ध साहित्यिक कृतित्व क्रमशः उनका ग्राख्यान तत्व ग्रौर उनका उपदेश तत्व घटा दिया करता । ग्राख्यान में रचयिता का झुकाव इतिहास के ग्रर्ध सत्य की ग्रोर रहता ग्रौर उपनिषदों की दर्शन कथाग्रों में उसका झुकाव नीति-परक जीवनदर्शन की ग्रोर ।

संस्कृत में ग्राख्यायिका :

ग्रंग्रेजी में जिसे हिस्टारिकल रोमांस कहा जाये ग्रौर जिसके उत्तम उदाहरण संस्कृत के 'वासवदत्ता', 'हर्षचरित', 'कादम्बरी' ग्रौर 'दशकुमार चरित' है, वह संस्कृत काव्य शास्त्रियों के ग्रनुसार दो वर्गों में बांटे जा सकते हैं—(१) कथा, (२) ग्राख्यायिका । ग्रग्नि पुराण तो ऐसे पाँच वर्ग बताता है—ग्राख्यायिका, कथा, खण्ड कथा, परिकथा ग्रौर कथानिका । लेकिन कई ग्रालोचकों के ग्रनुसार ग्राख्यायिका को छोड़कर शेष चारों एक ही विशालतर वर्ग—कथा—के ग्रन्तर्गत ग्रा सकते हैं ।[2] ग्रग्नि पुराण के ग्रनुसार ग्राख्यायिका की परिभाषा इस प्रकार है :—

कर्तृ वंश प्रशंसा स्याघत्र गथेन विस्तरात
कन्या हरणं-संग्रामविप्रलम्भविपत्तय:

---

1. Local colour, as the term implies makes its appeal largely in the eye of the reader. Atmosphere, on the other hand makes its appeal almost entirely to the emotions.—Glenn Clark, A Manual of the short story art. pp. 72.
2. दशकुमार चरित, सम्पादक म० र० काले, इन्ट्रोडक्शन फुटनोट-२ ।

भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीति वृति प्रवृत्तय:
उच्छ्‌वसैश्च परिच्छेदो यत्र सा चूर्णिकोतरा
वक्त् चापरवक्त् वा यत्र साख्यायिका मता
श्लोके: स्ववंशं संक्षेपात्कविर्यत्र प्रशंसति
मुख्यार्थस्य ग्रवताराय भवेयत्र कथांतरम् ।।
परिच्छेदो न यत्र स्याद्‌भवेद्वा लम्बके: क्वाचित्
सा कथा·································

(ग्रध्याय ३३७, श्लोक १२-१३)

यदि हम परवर्ती समर्थ ग्रालोचकों को देखें तो भामह की परिभाषा उल्लेखनीय हो जाती है। उन्होंने ग्राख्यायिका ग्रौर कथा के बीच में विभाजक रेखा डालने की कोशिश की है :—

प्रकृतानाकूल श्रव्य शब्दार्थ पद वृत्तिना
गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्‌वासाख्यायिका मता
वृतमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्
वक्रं चापरवक्त्रंच काले भा व्यधि ग्रंसि च
कन्या हरण संग्राम विप्रलम्भ उदयान्विता
न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्‌वावती ग्रपि
संस्कृतं संस्कृता चेष्टा कथावभ्रंशभाक्तथा
ग्रन्यै: स्वचरितं तस्यां नायकेन तुनउच्यते ।।

(१.२५-२९)

कथा ग्रौर ग्राख्यायिका :

इन पुरानी परिभाषाग्रों से हम भारत के प्राचीन गल्प साहित्य के ग्राधार पर कथा ग्रौर ग्राख्यायिका के सम्बन्ध में इन निर्णयों पर पहुँचते हैं— (१) ग्राख्यायिका में कविवंश का गद्य मय वर्णन होता है ग्रौर कथा में इसका संक्षिप्त पद्यमय वर्णन होता है। (२) ग्राख्यायिका में नायक द्वारा वधू-हरण, युद्ध, विरह ग्रौर दूसरी विपत्तियों के झेलने का वर्णन होता है जबकि कथा में ऐसा कुछ नहीं होता। (३) ग्राख्यायिका की कहानी नायक के मुँह से ग्रौर कथा किसी ग्रन्य द्वारा कही जाती है। (४) ग्राख्यायिका के परिच्छेद उच्छ्‌वास कहलाते हैं ग्रौर कथा सामान्यत: परिच्छेदों में नहीं बांटी जाती, यदि बांटी जाये तो उन्हें 'लम्बक' कहते हैं। (५) ग्राख्यायिका में पद वक्तृ

और घटना का ताल-मेल बिठाते हैं और मनुष्य की ग्राहक इन्द्रियों के लिए कहानी को सुगम बनाते हैं।[1]

आख्यान और उपनिषद

भारतवर्ष में गल्प, इतिहास और पुराण बहुत देर तक एक दूसरे के पर्याय रहे। भारत का प्राचीन इतिहास जितना पुराणों के अर्ध सत्य आख्यानों में मिलता है उतना और कहीं नहीं मिल सकता। पुराणों में इतिहास का आधार होता था लोक विश्वास या दन्तकथा, और कल्पना के आधार पर आख्यान की रचना होती। जो कुछ लिखा जाता वह एक शुद्ध साहित्यिक हुआ करता। साहित्यिक कृतित्व की दृष्टि से पुराणों का आख्यान या उपनिषदों में बिखरी कथाएँ ग्राह्य हैं लेकिन उनका शुद्ध साहित्यिक कृतित्व क्रमशः उनका आख्यान तत्व और उनका उपदेश तत्व घटा दिया करता। आख्यान में रचयिता का झुकाव इतिहास के अर्ध सत्य की ओर रहता और उपनिषदों की दर्शन कथाओं में उसका झुकाव नीति-परक जीवनदर्शन की ओर।

संस्कृत में आख्यायिका :

अंग्रेजी में जिसे हिस्टारिकल रोमांस कहा जाये और जिसके उत्तम उदाहरण संस्कृत के 'वासवदत्ता', 'हर्षचरित', 'कादम्बरी' और 'दशकुमार चरित' है, वह संस्कृत काव्य शास्त्रियों के अनुसार दो वर्गों में बांटे जा सकते हैं—(१) कथा, (२) आख्यायिका। अग्नि पुराण तो ऐसे पाँच वर्ग बताता है—आख्यायिका, कथा, खण्ड कथा, परिकथा और कथानिका। लेकिन कई आलोचकों के अनुसार आख्यायिका को छोड़कर शेष चारों एक ही विशालतर वर्ग—कथा—के अन्तर्गत आ सकते हैं।[2] अग्नि पुराण के अनुसार आख्यायिका की परिभाषा इस प्रकार है :—

कर्तृ वंश प्रशंसा स्याघत्र गथेन विस्तरात
कन्या हरणं-संग्रामविप्रलम्भविपत्तय:

---

1. Local colour, as the term implies makes its appeal largely in the eye of the reader. Atmosphere, on the other hand makes its appeal almost entirely to the emotions.—Glenn Clark, A Manual of the short story art. pp. 72.
2. दशकुमार चरित, सम्पादक म० र० काले, इन्ट्रोडक्शन फुटनोट-२।

भवन्ति यत्र दीप्ताश्र रीति वृति प्रवृत्तय:
उच्छ्वसैश्च परिच्छेदो यत्र सा चूर्णिकोतरा
वक्त् चापरवक्त् वा यत्र साख्यायिका मता
श्लोके: स्ववंशं संक्षेपात्कविर्यत्र प्रशंसति
मुख्यार्थस्य अवताराय भवेयत्र कथांतरम् ।।
परिच्छेदो न यत्र स्याद्भवेद्वा लम्बके: क्वाचित्
सा कथा·······························

(अध्याय ३३७, श्लोक १२-१३)

यदि हम परवर्ती समर्थ आलोचकों को देखें तो भामह की परिभाषा उल्लेखनीय हो जाती है । उन्होंने आख्यायिका और कथा के बीच में विभाजक रेखा डालने की कोशिश की है :—

प्रकृतानाकूल श्रव्य शब्दार्थ पद वृत्तिना
गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाख्यायिका मता
वृतमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्
वक्रं चापरवक्त्रंच काले भा व्यधि अंसि च
कन्या हरण संग्राम विप्रलम्भ उदयान्विता
न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्वावती अपि
संस्कृतं संस्कृता चेष्टा कथावभ्रंशभाक्तथा
अन्यै: स्वचरितं तस्यां नायकेन तुनउच्यते ।।

(१.२५-२९)

कथा और आख्यायिका :

इन पुरानी परिभाषाओं से हम भारत के प्राचीन गल्प साहित्य के आधार पर कथा और आख्यायिका के सम्बन्ध में इन निर्णयों पर पहुँचते हैं— (१) आख्यायिका में कविवंश का गद्य मय वर्णन होता है और कथा में इसका संक्षिप्त पद्यमय वर्णन होता है। (२) आख्यायिका में नायक द्वारा वधू-हरण, युद्ध, विरह और दूसरी विपत्तियों के झेलने का वर्णन होता है जबकि कथा में ऐसा कुछ नहीं होता। (३) आख्यायिका की कहानी नायक के मुँह से और कथा किसी अन्य द्वारा कही जाती है। (४) आख्यायिका के परिच्छेद उच्छ्वास कहलाते हैं और कथा सामान्यत: परिच्छेदों में नहीं बांटी जाती, यदि बांटी जाये तो उन्हें 'लम्बक' कहते हैं। (५) आख्यायिका में पद वक्तृ

ग्रौर ग्रपकवक्तृ छन्दों में रचे जाते हैं जो कि भावी घटनाग्रों का संकेत देते हैं कथा में यह नहीं रहते ।

ग्राख्यायिका ग्रौर दण्डी

दण्डी ग्राख्यायिका पर प्रमाण है। उन्होंने ग्रपने 'काव्यादर्श' में ग्रग्नि पुराण ग्रौर भामह द्वारा दी गई परिभाषाएँ खण्डित की हैं ग्रौर यह प्रतिपादित किया है कि कथा ग्रौर ग्राख्यायिका में कोई ग्रन्तर नहीं। वास्तव में ये दोनों एक ही रचना के दो प्रभेद हैं। यह जो माना गया है कि नायक या किसी ग्रौर के द्वारा वर्णित किये जाने से ग्राख्यायिका कथा से ग्रलग पड़ती है, गलत है; क्योंकि यह नियम सख्ती से पाला नहीं जाता। ग्राख्यायिका में भी कहानी ग्रन्य द्वारा कही जाती है। वास्तव में कथा ग्रौर ग्राख्यायिका एक ही वस्तु के दो नाम हैं ग्रौर इनके ग्रन्तर्गत कहानियों की सभी शाखायें ग्रा जाती हैं।[1] इस परिभाषा से साफ स्पष्ट होता है कि दण्डी, भामह की ग्रपेक्षा ग्रधिक कथाग्रों ग्रौर कथारूपों से परिचित थे। खुद दण्डी के 'दशकुमार चरित' में कविवंश वर्णन नहीं है। वक्ता, नायक नहीं है ग्रौर वक्तृ ग्रौर ग्रप-वक्तृ छंद विधान भी नहीं है।

'ग्रलंकार संग्रह' के लेखक लिखते हैं कि ग्राख्यायिका ऐतिहासिक तथ्यों पर ग्राधारित होती है जबकि कथा शुद्ध काल्पनिक वस्तु परक।[2] 'साहित्य-दर्पण' के रचयिता विश्वनाथ ने कथा में एक सुन्दर वस्तु, जो ग्रार्या वक्तृ ग्रौर ग्रप-वक्तृ में बद्ध हो, ग्रावश्यक बताया है ग्रौर उसमें दूसरे वर्ण्यों की ग्रावश्यकता का संकेत किया।

कथायां सरसं वस्तु मद्यैरेव विनिर्मितम्
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचित्वक्त्रापरवक्त्रके।
(परिच्छेद ६)

विश्वनाथ के इन विचारों ग्रौर पुराने विचारों में विशेष ग्रन्तर नहीं।

---

१. ग्रपादः पद संतानो गद्यमाख्यायिका कथा। इति तस्य प्रमेषो दो तपोराख्यायिका किल। नायकेन एव वाचाऽन्या नायकेनेतरेण वा। स्वगुणानिष्क्रिया दोषो नात्र भूतार्थशंसिनः—ग्रपिस्वनियमो दुष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्। ग्रन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा मेदल क्षणम्। (काव्यादर्श १।२३-३०)

२. कथा कल्पित वृत्तान्ता सत्यार्थाऽऽऽख्यायिका मता।

दोनों केवल गद्य काव्य

हम श्री कीथ के मत से सहमत हैं कि ग्राख्यायिका कहें या कथा वास्तव में दोनों की परिभाषाओं में आचार्य उलझ कर रह गये हैं। दोनों केवल गद्य काव्य हैं और दोनों में कोई अन्तर नहीं। श्री कीथ, दण्डी के मत का ही समर्थन करते हैं, जिन्होंने दोनों को एक साथ बताया था।[1]

इतिहास, दंत कथाएँ और ह्रास

आख्यायिका हो या कथा इसकी परिभाषा देते हुए आचार्य बाहरी और आकार गत महत्वहीन विशेषताओं में ही उलझ कर रह गये। जिस तरह हमारे अधिकांश प्राचीन आलोचक काव्य की आत्मा बताते हुए व्यर्थ की बहस में उलझ गये और अधिकतर काव्य के बाह्याकार को ही विवाद की वस्तु बनाया उसी तरह आख्यायिका के साथ भी हुआ। केवल एक बात का स्पष्ट और उपयोगी संकेत मिलता है। वह यह है कि आख्यायिका ऐतिहासिक वृत्तों पर अधिकतर निर्भर रहा करती थी। यद्यपि हितोपदेश कथा सरित्सागर जैसे कथाग्रन्थों की कथायें मूलतः पशु कथायें हैं फिर भी उनका प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध किसी न किसी इतिहास पुरुष से जोड़ा ही गया है। इतिहास पर बहुत ज्यादा निर्भर रहने का एक बुरा परिणाम निकला। जब भारतीय समाज वैदिक और उपनिषदिक भावना और दर्शन के वायवी वातावरण से निकल कर धीरे-धीरे महान साम्राज्यों और छोटे और बड़े संघर्षों के यथार्थ प्रवण युग में पदार्पण करता गया तो शुद्ध इतिहास ने और घटनाओं और व्यक्तियों के प्रति शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टियों ने जन्म लेना शुरू किया। परिणामतः साहित्य और विशेषकर कथा-साहित्य इतिहास पर कम निर्भर होता गया। इतिहास भी दंतकथाओं के वातावरण से निकल कर दृश्यमान घटनाओं के जीवन्त वातावरण में प्रवेश करता गया। कथा-साहित्य का यह इतिहास वाला आधार खिसकता गया तो कथा भी धीरे-धीरे बिखरने लगी और सामान्यतः भारतीय वाङ्मय में कथा-साहित्य का ह्रास ही होने लगा।

---

1. The distinction between akhyayika and katha is presented to us in a puzzling confusion in the writers on poetics explaining and justifying in a large measure the refusal of Dandin in his Kavyadarsa, to have anything to do with the distinction. – Classical Sanskrit Literature, : Let Keith. pp. 72.

हिन्दी कहानी : आधुनिक पश्चिमी कहानी

भारतीय साहित्य में कहानी की जो भी परम्परा रही, वह भले ही परिपूर्ण और सर्वाङ्ग हो लेकिन आज की हिन्दी कहानी उस परम्परा की सीधी उपज नहीं। हिन्दी कहानी के आरम्भिक चरणों में 'गाथा सप्तशती' या 'वैताल पंचशती' की कथा परम्परा के दर्शन मिल सकते हैं। लेकिन थोड़े ही काल के अनन्तर हिन्दी कहानी ने उस लुप्त परम्परा के अवशेषों से छुटकारा पाया और वह आधुनिक विश्व कहानी की ही जैसी हो गई। आधुनिक विश्व कहानी का रचाव पश्चिमी है क्योंकि आधुनिक कहानी की उत्पत्ति ही पश्चिमी समाज में हुई। पुनरुत्थान (रिनासां) और औद्योगिक क्रान्ति के बाद से लेकर पश्चिम में आज तक गद्य की सृष्टि पद्य की अपेक्षा अधिक हुई और गद्य में भी कहानी ने काफी विस्तार पाया। निष्कर्ष यह निकलता है कि हिन्दी में कहानी लिखने के चेतन और प्रौढ़ प्रयोग जब से आरम्भ हुए तब से अच्छी पश्चिमी कहानी बनने के सतत् प्रयास में है। हिन्दी में इस शती के दूसरे दशक के साथ ही कहानी की रचना शुद्ध साहित्यिक कृति के रूप में होने लगी और वे चाहें 'प्रसाद' हों चाहे 'प्रेमचन्द' कहानी को सबने आधुनिक अथवा पश्चिमी रूप ही दिया। हिन्दी में समालोचक कई हुए लेकिन हिन्दी आलोचना के इतिहास में अधिकतर विपन्नता ही रही। इसलिए कहानी के हिन्दी के परिभाषाकार अधिकतर स्वयं कहानीकार ही हैं जो ध्यान देने और विचारने योग्य हैं। हिन्दी कहानियों के काफी उल्लिखित और बहुविदित संग्रह 'इक्कीस कहानियां' की भूमिका में श्री रायकृष्णदास ने कहानी की परिभाषा स्थिर करने का प्रयत्न निम्नलिखित पंक्तियों में किया—"प्रसाद जी ने एक बार इन पंक्तियों के लेखक (रायकृष्णदास) से प्रसंगवश एक बात कही थी जिसका भाव लेकर कहानी की परिभाषा यूं बनायी जा सकती है।" "आख्यायिका में सौन्दर्य की एक झलक का रस है। मान लीजिये कि आप किसी तेज सवारी पर चले जा रहे हैं। रास्ते में गोल मटोल शिशु खेल रहा है, सुन्दरता की मूर्ति। उसकी झलक मिलते न मिलते भर में सवारी आगे निकल जाती है। किन्तु उतनी ही झलक ऐसी होती है कि उसकी स्थायी रेखा आपके अन्तरपट पर अंकित हो जाती है। यही काम कहानी भी करती है।"[1] यहां पर प्रसाद जी का आख्यायिका से तात्पर्य आधुनिक कहानी से ही

---

१. इक्कीस कहानियाँ: रायकृष्णदास (भूमिका)।

था। प्रसाद जी ने पश्चिमी आलोचकों की कहानी सम्बन्धी धारणा की ही पुष्टि की है कि कहानी में लघुता और संक्षिप्तता ही होनी चाहिये। वह जीवन की एक ही झांकी प्रस्तुत करती है और यह झांकी आवश्यकतया सुन्दर, स्वच्छन्द, आकर्षक और रंगीन तथा अपने में पूर्ण होती है। प्रसाद ने स्वयं जितना कहानी साहित्य रचा उसमें उनके विचार पूर्णतया प्रकट हुए हैं। वास्तव में प्रसाद के कहानी के बारे में यह विचार छायावाद कालीन गद्यकारों के ही विचार थे।

प्रेमचन्द की कहानी की परिभाषा

प्रेमचन्द हिन्दी के मूर्धन्य कहानीकार थे। उन्होंने कहानी के बारे में काफी अध्ययन किया था और अनुभव अर्जित किये थे। इसलिये कहानी को उन्होंने जिन परिभाषाओं में बांधा वह महत्वपूर्ण है। प्रेमचन्द के विचार ये थे :—

(१) कहानी में एक तथ्यता होती है, एक घटना, आत्मा की एक झलक, एक मनोवैज्ञानिक साध का प्रदर्शन, जो भी हो वह एक हो विविध न हो।

(२) घटना का स्थान अनुभूति ले सकती है। अनुभूति वाली कहानियाँ ऊंचे दर्जे की होती हैं।

(३) कहानी का आधार मनोवैज्ञानिक सत्य हो, वह सबसे उत्तम कहानी होती है।

(४) वह मनोरंजन करती है पर उसमें मानसिक तृप्ति के लिए भावों को जागृत करने के लिए भी कुछ होता है।

(५) यह आवश्यक है कि कहानी का जो भी तत्व निकले वह सर्वमान्य हो और उसमें कुछ बारीकी हो।

(६) कहानी में कुछ तीव्रता हो, ताजगी हो, कुछ भी ऐसा न हो जो अनावश्यक कहा जा सके।

(७) कहानी की भाषा बहुत ही सरस और सुबोध होनी चाहिये।

(८) कहानी घटना-प्रधान हो सकती है और चरित्र प्रधान भी। पिछले प्रकार की कहानियाँ उच्च कोटि की समझी जाती हैं।

(९) घटनाएँ पात्रों की मनोगति से स्वयं उद्भूत हो। वे प्रधानता न ग्रहण कर लें।[1]

इन विचारों से स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द कहानी में वे सब तत्व आवश्यक मानते थे जो आधुनिक कहानी के पूर्व या पश्चिम के आलोचक मानते हैं। जीवन की एक झलक, मनोवैज्ञानिक सत्य, अनुभूति की महत्ता, मनोरंजन, निष्कर्ष की ध्वनि, तीव्र प्रभाव, सरस भाषा शैली, घटनाओं का सहज-प्रबन्ध आदि विशेषताएं प्रेमचन्द भी पश्चिमी आलोचकों की तरह मानते हैं।

जैनेन्द्र : ग्रंथि समाधान

प्रेमचन्द के बाद के युग में हिन्दी कहानी के तीन महान लेखकों की परिभाषाएँ महत्वपूर्ण हैं, अतः इनको हम उत्तर प्रेमचन्द कालीन कथायुग के प्रतिनिधि लेखक मान सकते हैं। जैनेन्द्र ने प्रेमचन्द की ही परम्परा में इस तरह योग दिया कि जिस मनोवैज्ञानिक सत्य की ओर प्रेमचन्द ने इशारा किया था, उसी को उन्होंने अधिक बल देकर विस्तृत किया। परिस्थितियों के प्रभाव से मनुष्य के मनोभावों में जो घात-प्रतिघात, विकास और परिवर्तन देखे जाते हैं उन्हीं को जैनेन्द्र प्रकट करते हैं और कहानीकार का कर्त्तव्य भी यही समझते हैं कि वह जीवन के रहस्यों और मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों को सुलझाये। उनकी दृष्टि में "कहानी मानव-जीवन के चिरन्तन प्रश्नों शंकाओं और चिन्ताओं के उचित समाधान की खोज है।"[2] जैनेन्द्र का चरित्र उलझा हुआ और दुःखद व्यक्ति होता है। इसलिये उनकी दृष्टि में कहानी मानव मन के अन्तस को झकझोर देती है और उसमें से जीवन सत्य निकाल लाती है।

यशपाल : समाज चेतना

यशपाल अपने क्षेत्र में और अपनी विशेष दृष्टि के फलस्वरूप हिन्दी कहानी में एक अलग स्थान रखते हैं। उनकी समस्त रचना एक सिद्धान्त विशेष से सम्बन्ध रखती है जिसके अनुसार लेखक किसी भी स्थिति में और कहीं भी हो, समाज के प्रति कर्त्तव्यशील होना चाहिये और समाज में

---

१. प्रेमचन्द : उनकी कहानी कला।

२. हिन्दी कहानी और कहानीकार—प्रो० वासुदेव, पृष्ठ १८२।

समाजवाद की स्थापना के प्रति अपना योग देना चाहिये । कहानीकार की वे विशेष जिम्मेदारियाँ मानते हैं। कहानी के प्रयोजन पर विचार करते हुए यशपाल ने लिखा है कि "कहानी का प्रयोजन स्वयं कहानी नहीं है । उसका एक सामाजिक प्रयोजन है कि हर एक कहानी लेखक पर सामाजिक दायित्व होता है । उसे जीवन की विकृतियों को दूर कर सुव्यवस्था और सुरुचि के प्रसार में सहायक होना चाहिये ।"[१] एक और जगह पर यशपाल कहते हैं कि "कहानी जीवन की समस्याओं के सुलझाव का साधन है ।"[२] स्वयं उन्होंने मध्यवर्गीय नागरिक जीवन सम्बन्धी कहानियाँ लिखीं और यह सच है कि सामाजिक अन्याय का विरोध और नवक्रान्ति के स्वर का उद्‌घोष मध्यवर्गीय करता है क्योंकि हर युग में सामाजिक विषमता को सहने वाला और समझने वाला मध्यवर्गीय होता है ।

अज्ञेय : व्यक्ति की अधूरी कहानी

सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' उत्तर प्रगतिवादी युग में अकेला और अनुपम व्यक्तित्व रखते हैं। हिन्दी कविता में नया युग प्रवर्तित करने के अलावा गल्प में भी उन्होंने अपना विशिष्ट स्थान बनाया है । उनकी कहानियाँ संवेदनापूर्ण होती हैं और समाज और व्यक्ति का सर्वस्व भीतरी तहों को उघाड़ कर रख देती है । स्वयं उन्होंने कहानी की परिभाषा इस प्रकार दी है—"कहानी जीवन की प्रतिच्छाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है, एक शिक्षा है जो उम्र भर मिलती है और समाप्त नहीं होती है ।"[३] अज्ञेय की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी मौलिकता और यह विशेषता उनके उपन्यासों, उनकी कविता, उनके विचारपूर्ण निबन्धों और उनकी कहानियों में यत्र-तत्र प्रकट होती है । जिस तरह प्रसाद ने वेद और उपनिषद की भाषा को नये संस्कार दिये उसी तरह अज्ञेय ने अपने गद्य और विशेषकर कहानियों के गद्य में हिन्दी भाषा को नये अर्थों तक पहुँचाया और हिन्दी में विचार-शीलता की नींव डाली ।

प्रभान्विति और औत्सुक्य

पूर्व और पश्चिम के आलोचकों द्वारा प्रस्तुत किये गये कहानी क इन

---

१. हिन्दी कहानी और कहानीकार—प्रो० वासुदेव, पृष्ठ २५५ ।

२. वही, पृष्ठ २५६ ।

३. विपथगा : कड़ियाँ, पृष्ठ २२२ ।

लक्षणों और कहानी सम्बन्धी इतनी परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने कहानी की यह परिभाषा निर्धारित की है—"कहानी गद्य रचना का कथासंपृक्त वह स्वरूप है जिसमें सामान्यतः लघु विस्तार के साथ किसी एक ही विषय अथवा तथ्य का उत्कट संवेदन इस प्रकार किया गया हो कि वह अपने में सम्पूर्ण हो और उसके विभिन्न तत्व एकोन्मुख होकर प्रभावान्विति में पूर्ण योग देते हों।"[1] इसी प्रकार डा० गुलाबराय ने भी विभिन्न पश्चिमी परिभाषाओं को दृष्टि में रखते हुए निष्कर्षतः कहानी की यह परिभाषा निश्चित की है—"छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति-केन्द्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक परन्तु कुछ-कुछ अप्रत्याशित ढंग से उत्थान-पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्रों पर प्रकाश डालने वाला कौतूहल पूर्ण वर्णन हो।"[2] कहानी को परिभाषा में बाँधने के अनेक प्रयत्न आधुनिक आलोचकों ने किये फिर भी तथ्य यही है कि कहानी का क्षेत्र और उसकी सीमा इतनी विशाल है कि उसे बाँधा नहीं जा सकता। गुलाबराय जैसे आधुनिक विद्वानों ने आज तक की परिभाषाओं को अपनी एक ही परिभाषा में समोने का प्रयत्न किया है। लेकिन आज का युग इतनी तेजी से बदल रहा है कि कहानी कहानी नहीं रहती और कविता कविता नहीं। हमारा जीवन विविध मतवादों से और आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक ऊहा-पोह से टकरा रहा है। इसलिए जीवन का कोई स्थिर रूप नहीं। कहानी का भी कोई स्थिर रूप न होना स्वयं सिद्ध है। आधुनिक युग को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले मतवादों में मार्क्सवाद, पूंजीवाद, फ्रायड का मत, युंग और ऐडिलर जैसे मनोविश्लेषकों का मत और सबसे बढ़कर विज्ञान द्वारा हमारे स्वप्नों और सत्यों का विखण्डन आदि है।

नव आन्दोलन और नव परिभाषाएँ

स्वतन्त्र भारत में जिस तरह साहित्य की अन्य विधाओं में परिवर्तन आये उसी तरह कहानी भी दिन-प्रतिदिन के बदलते सम्बन्धों और मूल्यों को व्यक्त करने लगी और इस तरह परिवर्तित होती गई। न केवल स्वतन्त्र भारत और पराधीन भारत के सपनों और सत्यों से पूर्व जीवन में अन्तर है बल्कि खुद

---

१. कहानी का रचना-विधान, पृष्ठ १४।

२. 'काव्य के रूप' : गुलाबराय, पृष्ठ २०३।

पिछले बीस वर्ष से स्वतन्त्र भारतीय जीवन और यथार्थ में सैकड़ों परिवर्तन आये । नये और बदलते यथार्थ को आत्मसात् और व्यक्त करने के कारण कहानी के रूप बदले और कहानी में कई आन्दोलन चले । कहानी तो कहानी ही रही लेकिन उसमें यथार्थ को समझने और प्रकट करने के अलग-अलग दृष्टिकोणों के अनुसार अलग सम्प्रदाय चल पड़े । सचेतन कहानी, अकहानी, नयी कहानी, आंचलिक कहानी, नगर कहानी और ग्राम कहानी जैसे नाम केवल नाम नहीं हैं, अलग-अलग आन्दोलन हैं । इन सबने कहानी की वस्तु और उससे शिल्प पर अलग-अलग स्थापनाएँ कीं ।

नामवरसिंह : कहानीपन और अन्तर्विरोध की पकड़

आधुनिक साहित्य के एक समर्थ आलोचक श्री नामवरसिंह ने कहानी में विविध मतवादों के होने से उत्पन्न उलझन को सुलझाने की आवश्यकता पर बल दिया क्योंकि कहानीकार "मानवीय मूल्यों के संरक्षण, जीवनी शक्ति के परिप्रेषन एवं सामाजिक नवनिर्माण की उत्कट प्यास" का दावा करते हैं । वास्तव में उनके अनुसार हम कहानी को आधुनिक कविता पर आधारित न करें तो स्थिति स्पष्ट होगी । आधुनिक कविता में इस तरह के दावे काफी मिलते हैं । उनके अनुसार कहानी को हम कथानक चरित्र वातावरण, भावनात्मक प्रभाव विषयवस्तु आदि अलग-अलग अवयवों के रूप में देखने के अभ्यस्त हो गये हैं और हम कहानी को केवल 'प्रधानता' के आधार पर चरित्र-प्रधान और कथानक-प्रधान कह डालते हैं । वास्तव में कहानी का कहानीपन अनिवार्य वस्तु है क्योंकि "कविता में जो स्थान लय का है कहानी में वही स्थान कहानीपन का है । कविता चाहे जिस हद तक छन्द मुक्त हो जाये लेकिन वह लययुक्त नहीं हो सकती...कहानीपन से रहित गद्य रचनाओं के बारे में भी यही बात लागू होती है ।"[१] इसी तरह नामवरसिंह आज की कहानी के बारे में कहते हैं कि "कहानी हमारे जीवन की छोटी से छोटी घटना में भी अर्थ खोज लेती है या उसे प्रदान कर देती है ।"[२] आज का कहानी समालोचक पुराने कथारूपों को चाहे मानता हो लेकिन पुरानी परिभाषाओं को नया अर्थ देता है । कहानी को अधिकांश आलोचकों ने जीवन का

---

१. 'नयी कहानी' : सफलता और सार्थकता : नामवरसिंह, 'कहानी', पृष्ठ १२, १९५८ ।

२. वही , पृष्ठ १३ ।

एक टुकड़ा माना है और बस। लेकिन "कहानी जीवन के टुकड़े को नहीं बल्कि टुकड़े में निहित अन्तर्विरोध, द्वन्द्व, संक्राति अथवा क्राइसिस को पकड़ने की कोशिश करती है और ठीक ढंग से पकड़ में आ जाने पर यह खण्डगत अन्तर्विरोध भी बृहद् अन्तर्विरोध के किसी न किसी पहलू का आभास दे जाता है।"[1]

अकहानी

नामवरसिंह ने कहानी के अर्वाचीन रूप को देखते हुए अपना मत प्रस्तुत किया। लेकिन इन्होंने कहानी के कुछ अर्वाचीन कहानीगत आन्दोलनों को उपर्युक्त लेख में दृष्टिगत नहीं रखा है। यदि हम स्वयं समकालीन कहानीकारों के मतों को ही लें तो इस सम्बन्ध में उपादेय रहेगा। 'अकहानी' आज का एक प्रमुख और चेतन आंदोलन है और इसके बारे में प्रख्यात कहानी लेखिका ममता कालिया और उनके कहानीकार पति रवीन्द्र कालिया का मत उद्धृत किया जा सकता है। 'अकहानी' कहानी के लोकप्रिय और प्रचलित रूपों के प्रति एक प्रतिक्रिया के रूप में पैदा हुई और इसलिए इस पर असामाजिकता और शिल्पगत उपेक्षा के आरोप लगाये गये। लेकिन ममता कालिया की दृष्टि में—"अकहानी को सजे-सजाये कृत्रिम ढांचों से चिढ़ है। वह जीवन में शिल्पहीनता पाती है आकृति हीनता पाती है और उसे ईमानदारी से उसी आकृतिहीन शिल्पहीन रूप में आपके सामने रख देती है। अकहानी का शिल्प एक शिल्पहीन-शिल्प है। उसे कहानी के नाम पर वे रूढ़ियां स्वीकार्य नहीं जो कहानी को कहानी कम और किस्सा ज्यादा बनाती हैं।"[2] 'अकहानी' आधुनिक नयी कविता के एक पक्ष की ही तरह हमारे जीवन के भय, त्रास, मृत्यु, कुण्ठा और निराशा को आधार बनाकर चलती है। इसका कारण यह बताते हैं कि अकहानी में—"केवल एक संवेदना है जिसे अत्यन्त मानवीय स्तर पर उद्घाटित किया जाता है, रचा अथवा आरोपित नहीं किया जाता…नया लेखक मृत्यु-उन्मुख नहीं मगर विज्ञान की प्रगति के बावजूद व्यक्ति (निहायत सामाजिक व्यक्ति भी) को जो स्थितियाँ अत्यन्त निरीह और असमर्थ छोड़ जाती है तथा लेखक उससे परेशान हो जाता है।"[3]

१. 'नयी कहानी' : सफलता और सार्थकता : नामवरसिंह, 'कहानी', पृष्ठ १३।
२. 'नयी कहानियाँ' मार्च १९६६, 'पाठक लेखक गोष्ठी', ममता कालिया, पृ० ११८।
३. वही, रवीन्द्र कालिया, पृष्ठ १२०।

नयी कहानी : समाजबोध की ओर झुकाव

अकहानी हो चाहे नयी कहानी समकालीन भ्रमपूर्ण विरोध और विषमता से आहत आदमी की असमर्थ स्थिति दोनों में उभरती है। जिन कारणों से आज का मनुष्य मनुष्य नहीं रहा उसमें एक ओर अज्ञान प्रेरित पशुता है दूसरी ओर निर्दोष असमर्थता भी। वह अपने समाज और अपनी स्थिति का नायक है, नेता है। लेकिन अपने ही समाज की कैद में वह बन्दी है, खुद ही वह छटपटाता है लेकिन खुद ही भयानक परिवेश का निर्माण करता है। आदमी के इस यथार्थ को प्रगट कैसे किया जाये, यही आज की कहानी की मुख्य समस्या रही है। इसे प्रगट करने के लिए व्यंग्य एक सशक्त शस्त्र है क्योंकि "सन्दर्भ भी जटिलता, यथार्थ के प्रतिरोध और भावबोध की सूक्ष्मता ने नयी कहानी में व्यंग्य को प्रमुखता प्रदान की।"[1] और इसीलिए "हिन्दी की नयी कहानी में वर्तमान के प्रत्यक्षीकरण के लिए व्यंग्य का आधार ग्रहण किया गया है...व्यंग्य यथार्थ से अलग नहीं हो सकता। यथार्थ व्यंग्य को छोड़कर कमजोर पड़ जाता है, नयी कहानी के सन्दर्भ में युग यथार्थ के प्रति सचेत होने का दावा बार-बार हुआ है।"[2] नयी कहानी अब इतनी लोकप्रिय और सुस्थापित हो गई है कि आज के कहानी साहित्य में वही पठनीय, मननीय और विवादास्पद भी बन गई है। अधिकतर नये कहानीकार प्रगतिवादी विचारधारा से परोक्ष सम्बन्ध रखते हैं, इसलिए समाज के प्रति लेखक के दायित्व के बारे में वे अधिक सचेत हैं। श्री कमलेश्वर इसीलिए कहते हैं कि "कहानी दिमागी समस्याओं को खड़ा करके आरोपित सामाजिकता की ओर नहीं बल्कि सामाजिक और समाज से संपृक्त व्यक्ति की यथार्थ चेतना की ओर उन्मुख है, यह यात्रा कहानी से यथार्थ बोध की ओर नहीं बल्कि यथार्थ बोध से कहानी की ओर है।"[3] और इसीलिए नयी कहानी आज के मनुष्य को पूरे तौर पर छूती है। वह केवल कोई "प्रवृति-विशेष और धारा विशेष नहीं है। वह आज की परिस्थितियों में से उद्‌भूत मानवीय वास्तविकता की

---

१. लहर—अक्टूबर १९६६, मैं, वह और हम के बीच गुजरती एक बहस : धनंजय, पृष्ठ ६९-७०।

२. वही, पृष्ठ ७०।

३. नयी कहानियाँ, विदेशी कहानी विशेषांक मई १९६४, कुछ बातें : (सम्पादकीय) कमलेश्वर, पृष्ठ ३।

समग्र संवेदना और भावबोध की कहानी है।"[१] "आज नयी कहानी जीवन की भौतिक और वैज्ञानिक आकांक्षाओं की एक स्वस्थ परम्परा प्रारम्भ करने को आकुल है।"[२]

ग्राम-कथा बनाम नगर-कथा

जब नयी कहानी का आन्दोलन शुरू हुआ तो इसलिए विषय आदि की दृष्टि से पुरानी कहानी को एकदम अस्वीकृत नहीं किया। नयी कहानी वास्तव में परम्परा में से ही विकसित हुई। लेकिन आज कई आलोचकों ने शहरी कहानी और ग्रामीण कहानी का विभाजन करना शुरू किया और प्रकृति, वस्तु और शिल्प के आधार पर इनमें पारस्परिक विभिन्नता की रेखायें खींची। प्रेमचन्द की कहानियों में ग्राम-नगर दोनों छुये जाते थे लेकिन उस समय नगर कथा और ग्राम कथा जैसे विभाजन स्थापित नहीं हुए। नागरिक खोखलेपन पर करारे व्यंग्य हुए। वहाँ के जीवन में कोमलता और सौन्दर्य भी ढूंढ़ा गया। ग्राम कथा को एक स्थायी कथा प्रवृत्ति का परिणाम बताया गया क्योंकि गाँवों की दशा बदल रही है और शहर की अच्छाइयों और बुराइयों का प्रभाव वे सकार या नकार रहे हैं। 'ग्रामकथा' नाम इसलिए भी चल पड़ा क्योंकि हिन्दी में आंचलिक नाम से नयी कथा विधा प्रस्थापित हुई, लेकिन आलोचकों ने यह माना कि "ग्राम कथा ज्यादा व्यापक और उपयुक्त शब्द है। आंचलिकता एक प्रवृत्ति मात्र है। ग्राम कथाएं सभी आंचलिक नहीं होती हैं।"[३]

आंचलिक कहानी : समग्र घनीभूत संवेदना

आंचलिक कहानी किसे कहा जाये? इस पर विभिन्न आलोचकों के विभिन्न मत हैं। डा० शिवप्रसाद सिंह के अनुसार "आंचलिक वे ही कहानियाँ कही जा सकती हैं जो किसी जनपद के जीवन, रहन-सहन, भाषा-मुहावरे रूढ़ियों-अन्धविश्वासों, पर्व उत्सव, लोक-जीवन, गीत नृत्य आदि को चित्रित करना ही अपना मुख्य उद्देश्य माने। आंचलिक तत्व ही उनके साध्य होते हैं।"[४]

---

१. आलोचना ३४, विशेषांक, नयी पीढ़ी की उपलब्धियाँ, प्रो० धनंजय वर्मा, पृष्ठ १०१।
२. नयी कहानियाँ, दिसम्बर १९६४—ज्ञानरंजन का आत्मकथ्य, पृष्ठ ६६।
३. आज की हिन्दी कहानी : शिवप्रसाद सिंह, नयी कहानी : डा० देवी शंकर अवस्थी, पृष्ठ १४३।
४. नयी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति : डा० देवीशंकर अवस्थी, आज की हिन्दी कहानी : शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १४३-४४।

आंचलिक कहानियों के उपयुक्त कथा क्षेत्र : गांव

इस तरह ग्राम कहानी के सन्दर्भ में आंचलिक कहानी आ जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आंचलिक कहानी ने हमारे ग्रामीण-जीवन को मुख्य तौर पर सम्पूर्ण रूप में प्रस्तुत किया है लेकिन आंचलिक कहानी केवल ग्राम-कहानी ही नहीं हो सकती। आंचलिक कहानी या उपन्यास किसी एक ही अंचल को समग्र, संवेदना के साथ प्रस्तुत करती है वह अंचल शहर का हो चाहे गाँवों का हो। यह केवल कहानीकार की पैनी सूझ और दृष्टि पर निर्भर है कि वह अपने कथ्य के अंचल में कितना बैठता है। हिन्दी आंचलिक कहानीकारों में कई ऐसे हैं जिन्होंने केवल नगरों को लिया। केवल अपने आंचल में सम्पूर्ण रूप से जीने और आंचल के जीवन को आत्मसात् करने से ही अंचल कहानी में खुद बोलने लगता है। अंचल का भूगोल कुछ भी हो वह शहरी हो चाहे ग्रामीण। वास्तव में आंचलिकता कथा साहित्य में आधुनिक संवेदना को व्यक्त करने की चेतना के फलस्वरूप आती है और इसके लिए माध्यम कोई भी हो सकता है नगर या ग्राम। नगर या ग्राम के जीवन भर का आधार लेने भर से कोई चीज आधुनिक संवेदना से संपृक्त या वियुक्त नहीं हो जाती। प्रेमचन्द ने अपने युग की सारी आधुनिक चेतना को ग्राम-जीवन के माध्यम से ही अभिव्यक्ति दी। लेकिन यह निर्विवाद है कि "आधुनिकता या ज्यादा सहज ढंग से कहें तो आधुनिक संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए ग्राम-जीवन कहीं ज्यादा उर्वर और उपयुक्त क्षेत्र है।"[१] आंचलिक कहानी आज के मनुष्य और जीवन की संघर्ष की कहानी है और "संघर्ष का सारा दर्द वहाँ दिखाई पड़ेगा जहाँ एक साथ परम्परा और आधुनिकता दोनों आमने-सामने खड़ी हो।"[२] आधुनिक और परम्परा का सबसे तीव्र संघर्ष आज के गाँव झेल रहे हैं और यह विडम्बना भारत के गाँवों की सबसे अधिक है इसलिए भारत में और विशेषकर हिन्दी में आंचलिक कहानी आधुनिक युग बोध के लिए आवश्यक है।

———

१. आंचलिकता और आधुनिक परिवेश—शिवप्रसाद सिंह, कल्पना-१६१, पृष्ठ ३८—पहला कालम।

२. वही, पृष्ठ ३८—दूसरा कालम।

परिच्छेद दो

"अन्तहीन कहानी की परिकथा"

कथा और कहानी में तात्विक अन्तर
कथा तत्व और कथा मात्र का वैभिन्य
कथा तत्व का इतिहास : नीति, श्रुति, उपनिषदों में,
सूक्तियों, प्रसंगों के बीच जीवित,
इतिहास, धर्म और कल्पना का संयोग, अपभ्रंश में कथातत्व
चारण साहित्य में कथातत्व; प्रेमाख्यानक काव्य में,
दंत कथाओं का आरम्भ; जातक; परवर्ती कथा साहित्य,
मनोरंजक कथाएँ; उपदेशात्मक कथाएँ; अर्धकाव्यात्मक कथाएँ
लोक गाथाएँ
पश्चिमी और हिन्दी कहानी का इतिहास
अंग्रेजी अमरीकी कहानी
यूरोपी कहानी विशालतर
आधुनिक बोध
अनुवादकों के बीच से मूल कहानीकारों का विकास
यथार्थ और भावमूलक कथाकार
उत्तर-प्रेमचन्द त्रिमूर्ति
नयी कहानी; लघुतता का पक्षपात
आंचलिकता : नया नामकरण अधिक ।

परिच्छेद दो

"अन्तहीन कहानी की परिकथा"

'कथा' और 'कहानी' में तात्विक अन्तर

भारतीय साहित्य में कविता, नाटक, निबन्ध आदि रूप जिस तरह विकसित होते रहे, उसी तरह कथारूप भी स्वतन्त्र और समृद्ध विकसित होता रहा। वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि साहित्यिक युगों में कथा अपने बीजरूप से विकसित होती हुई आज काफी उन्नत हो चुकी है। यही कारण है कि कहानी के इतिहास को देखने के लिए हमें भारत का प्राचीन साहित्य विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्ति पाता हुआ कथा की कला में अपनी स्वतन्त्र सत्ता इन रूपों में रखता है :— आख्यायिका, आख्यानक, जातक, पौराणिक और दन्त कथाएँ। यहाँ कथा और कहानी में भेद किया जाना चाहिये। आज जिसे हम कहानी कहते हैं वह आकार-मात्र की दृष्टि से भी प्राचीन भारतीय या पाश्चात्य-साहित्य में नहीं मिलती। प्राचीन युग का जो कुछ हमें मिलता है वह कथा है। कथा और कहानी में भेद है यद्यपि कहानी शब्द की व्युत्पत्ति कथा से ही हुई है (कथा > कहा > कथन > कहण > कहन)। कथा में वृत्त और इतिहास (इतिवृत्त) का प्राधान्य रहता था जबकि कहानी में संपुंजन, केन्द्रोन्मुखता और संक्षिप्तता प्रधान रहती है। कथा फिर इतिवृत्त या इतिहास पर अवश्य निर्भर रहती, कहानी नहीं रहती। 'कहानी' से हम यहाँ आज की अर्वाचीन कहानी का ही तात्पर्य नहीं ले रहे अपितु हिन्दी की आरम्भिक कहानियों, जैसे—राजा शिवप्रसाद की "राजा भोज का स्वप्न" से भी।

कथातत्व और कथामात्र का वैभिन्य

यही प्राचीन कथा दो रूपों में विकसी। एक यही कि कहीं कथा का केवल तत्व विद्यमान रहता और कहीं-कहीं कथा अपने निजी पूर्ण रूप में रहती। कथा का इतिहास देखने के लिए हमें कथा का यह तत्व-रूप अलग से देखना होगा। यह तत्व भले ही कथा-इतर साहित्य रूपों में—जैसे खंडकाव्य, महाकाव्य, नाटक रूपक आदि, विकसा हो। कहानी के इतिहास का सम्बन्ध इन कथा-इतर रूपों के इतिहास के साथ जोड़ने का औचित्य इसलिए है क्योंकि

इन रूपों में कथातत्व ही सर्वोपरि रहता था। काव्यत्व, नाटकत्व, रूपकत्व आदि बाद में आता। कथा का सूत्र ही इनमें कवि और भावक, श्रोता और पाठक, दोनों के आकर्षण और आकलन का बिन्दु रहता। रामकथा का विकास हो या कृष्ण कथा का, काव्यों में बिखेर रहने के बावजूद भी स्वतन्त्र कथातत्व का सूत्र बना रहता है। कथा का दूसरा रूप—घोषित, चेतन और अभिप्रेत कथा-लेखन का है। इस तरह की कथाएँ तत्व रूप में नहीं, अपितु आकार, अभिप्राय और उद्देश्य की दृष्टि से भी कथारूप में ही मिलती हैं। उदाहरण हितोपदेश या जातक कथाओं का लिया जा सकता है।

कहानी के इतिहास का तीसरा चरण हिन्दी-कहानी के इतिहास का है। हिन्दी कहानी अपने वास्तविक कहानी रूप में बीसवीं शती में शुरू होती है लेकिन इसमें प्राचीन कथा तत्वों और स्वतन्त्र कथाओं, दोनों की समस्यायें निहित और समाहित हैं।

अतः हम कहानी के ऐतिहासिक पहलू का अध्ययन तीन शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं :—

१. कथा तत्व का इतिहास।

२. कथा का इतिहास।

३. हिन्दी कहानी का इतिहास।

१. कथातत्व का इतिहास

आलोचकों को कथातत्व के प्रथम चिह्न वैदिक संस्कृत अर्थात् ऋग्वेद में मिले। ऋग्वेद के कथासूत्रों में यज्ञ-धूम की सुगन्धि और मन्त्रों का सुन्दर संगीत मिलता है। इनकी कथा का वह रूप नहीं जो ब्राह्मण और उपनिषदों में है। ऋग्वेद विभिन्न दैवी शक्तियों की आराधना, पूजा प्रशंसा में कहे गये असंख्य मन्त्रों का भण्डार है। इन मन्त्रों के बीच-बीच में कई ऐसे सूत्र मिलते हैं जिनमें दो या तीन पात्रों के परस्पर कथोपकथन जुड़े होते हैं, ऐसे सूत्रों को संवाद-सूक्त कहते हैं। इन्हीं सूक्तों का आगे चलकर ब्राह्मण एवं उपनिषदों में विकास हुआ। ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञानुष्ठान का विस्तृत वर्णन है। इसी सम्बन्ध में प्राचीन ऋषियों तथा राजाओं की शिक्षा-मूलक एवं मनोरंजक कथाओं का उल्लेख किया गया है।

नीति, श्रुति, उपनिषदों में

प्रातिभ चक्षुओं द्वारा साक्षात्कृत, आध्यात्मिक ज्ञान के सागर उपनिषदों में भी अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं। संहिता में सांकेतिक बीज-कथाओं को 'वृहद्वेता' में तथा षडगुरु शिष्य की 'कात्यायन सर्वानाक्रमणी' की वेदार्थ दीपिका टीका (११८४ ई०) में किंचित विस्तार से पल्लवित किया गया है। 'नीति मंजरी' (सन् १४९४ ई०) अधिकांश वैदिक कहानियों का इस ग्रंथ में व्यवस्थित ढंग से उल्लेख करके उनसे प्राप्त नीति-उपदेशों को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।"[1]

"इन वैदिक कहानियों का उद्देश्य मनोरंजन नहीं है, इनके माध्यम से तप, यज्ञ एवं पवित्र जीवन की महत्ता प्रदर्शित की गई है। अनुभूत एवं साक्षात्कृत आध्यात्मिक तत्वों का प्रतिपादन किया गया है।"[2]

सूक्तियों-प्रसंगों के बीच जीवित

इनके पात्र अभिजात राजा, ऋषि, विप्र आदि हैं। फिर भी उस यज्ञ धूम सुरभित पवित्र वातावरण के भीतर से तत्कालीन मनुष्य की उच्चतर उपलब्धियों के साथ ही साथ उसकी मानवोचित दुर्बलतायें भी अभिव्यक्त हो उठी हैं तथा तत्कालीन समाज यत्र-तत्र यथार्थता में उभर आया है। तत्वदोष के कारण पति द्वारा तिरस्कृत 'अपाला' ने अपनी साधना से इन्द्र को प्रसन्न कर सुन्दर शरीर प्राप्त किया। मन्त्र दृष्टा सोमरि कटाव ने इन्द्र की आराधना कर अक्षय यौवन एवं विलास के उपकरण प्राप्त किये तथा पचास राज्य कन्याओं से विवाह करके भोग में पूर्णतः लिप्त होकर उसकी निस्सारता का अनुभव किया। ऋषि अजीगर्त के तीन सौ गायों के दक्षिणा दिये जाने पर बालक नचिकेता ने सत्याग्रह किया। नारी के प्रेम एवं उसे प्राप्त करने की लालसा ने विप्र श्याश्व को मन्त्रदृष्टा ऋषि बना दिया। दध्यङ्ग आर्थवन ने इन्द्र द्वारा मस्तक-छेद की चिन्ता किए बिना अश्विनी कुमारों को – मधुविद्या का उपदेश दिया। इन सभी कहानियों में उच्चतर साधना की ओर आग्रह होते हुए भी शारीरिक प्रयोजनों से सम्बन्धित मानवीय दुर्बलताओं के सुन्दर संकेत हैं। उपनिषद की कथाओं में भी हम कथा तत्व की ओर देखते हैं

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ३७७।
२. हिन्दी उपन्यास : श्री शिवनारायण वास्तव, पृष्ठ २।

जिनमें सुख-शान्तिदायिनी सूक्तियों के बीच-बीच में कथाएँ आने लगती हैं। लेकिन ये कथायें कथा-साहित्य की दृष्टि से नहीं आयी हैं वरन् उपनिषदों के भिन्न-भिन्न प्रतिपाद्य तत्वों को लेकर उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। ठीक उसी तरह जैसे—'बाईबिल में ईसाई धर्म की महान् सत्ता और ईश्वर की अनन्त शक्ति में विश्वास और अविश्वास के धरातल पर अनेक कथायें मिलती हैं।

१. केनोपनिषद में : देवताओं की शक्ति-परीक्षा की कथा।

२. कठोपनिषद में : नाचिकेता के साहस की कथा।

३. छान्दोग्य उपनिषद में : सत्य काम की गोसेवा, उषस्ति की कठिनाई, महातमा रैक्व और राजाजान श्रुति आदि की कथायें।

४. वृहदारण्यक में : गार्गी और याज्ञवल्क्य की कथा।

५. छान्दोग्य में : स्वेतकेतु और उद्दालक की कथा।

६. तैत्तिरीय में : अश्विनी कुमार और उनके गुरु दध्यंग की कथा।

७. प्रश्नोपनिषद में : कबन्धी, वैदीर्भ, कौशल्य, सत्यकाम, गार्ग्य और सुकेन की कथाएँ।

८. मुण्डकोपनिषद में : महाशाल्य शौनक और अंगिरा की कथा।

इन कथाओं में जहाँ तत्कालीन समाज, दर्शन तथा अन्य स्थितियाँ व्यंजित हुई हैं वहाँ उनमें अलौकिक-पवित्रता भी मिलती है। इन कथाओं के पात्र प्रायः ऋषि, ब्रह्मचारी, राजा, पुरोहित होते हैं और इनका मूल विषय भी आत्मा-परमात्मा से सम्बन्धित होता है। ये कथायें आदर्श और शिक्षाप्रद हैं। प्रत्येक कथा में कथानक का विकास गहन तत्वों के प्रवचन के बीच तथा प्रायः समस्त कथाओं का आरम्भ प्रश्न और जिज्ञासा से हुआ है। यही कारण है कि उपनिषद की कथायें मनोरंजक होने की अपेक्षा शिक्षाप्रद हैं।

आख्यानक काव्य तथा पौराणिक कथाओं में कथातत्व

संहिता ब्राह्मण-ग्रन्थ और उपनिषदों में बिखरे संयोग से आगे अनेक कथायें प्रचलित हुईं और उनका विकास लोक में काफी हुआ। लेकिन उस सत्य तक आते आते धर्म, लोक-भावना और साहित्यिक रुचि तीनों एक दूसरे से तादात्म्य स्थापित करने लगी थीं। अतएव उस काल के साहित्यिक मनीषियों को एक महान् और व्यापक कथा ढूंढ़नी पड़ी लेकिन तब तक की सामग्री के

अन्तस्तल में ढूंढ़ने से उन्हें जो राम-कृष्ण की कथा मिली होगी, वह बहुत छोटी रही होगी। अत वाल्मीकि और वेदव्यास को कुछ मूलकथा और बहुत कुछ कल्पना के संयोग से एक आख्यान बनाना पड़ा होगा, जो अपने रूप में समस्त पूर्ववर्ती कथाओं से महान् और व्यापक सिद्ध हुआ होगा और ऐसे ही आख्यान के मेरुदण्ड पर उन मनीषियों ने क्रमशः रामायण और महाभारत आख्यानक काव्यों की सृष्टि की होगी तथा इनमें अन्यान्य कथाओं की सुन्दर लड़ी गूंथकर उन काव्यों को महाकाव्य बनाना पड़ा होगा।

इतिहास धर्म और कल्पना का संयोग

"काल की दृष्टि से रामायण और महाभारत का समय बौद्ध जातक कथाओं से बहुत पहले पड़ता है। रामायण की रचना बुद्ध के जन्म से पहले ही हुई अर्थात् रामायण के पाँच सौ ई० पूर्व से पहले की रचना मानना न्याय संगत है।"[१] "महाभारत भी बुद्ध के पहले की रचना है परन्तु वर्तमान रूप उसे बुद्ध के पीछे प्राप्त हुआ है।"[२] इस तरह से रामायण और महाभारत के माध्यम से आख्यानकों और पौराणिक कथाओं का आरम्भ जातक कथाओं से पहले हो चुका था और इनमें कथातत्व अक्षुण्ण और प्रमुख रहा। "कथातत्व की दृष्टि से महाभारत का स्थान प्राचीन संस्कृत साहित्य में अपूर्व है। इसमें वर्णित कथाओं की परम विशेषता यह है कि इनमें इतिहास, धर्म और कल्पना तीनों का इतना सुन्दर समन्वय हुआ है कि ये कथायें पौराणिक कथाओं के रूप में अधिकांश परवर्ती संस्कृत साहित्य की उपजीव्य बनी रही। दूसरी ओर महाभारत की ये असंख्य कथायें मूल आख्यान से इतनी कलात्मकता से जुड़ी हुई हैं कि इनके सामूहिक कथातत्व में हमारा समग्र जीवन अपने विस्तृत रूप में समा गया है। यही कारण है कि महाभारत जहाँ एक ओर आख्यानक काव्य है वहाँ दूसरी ओर पुराण भी।"[३]

इस प्रकार वैदिक साहित्य की कथा परम्परा पुराणों में प्रकट हुई, उद्देश्य यद्यपि धर्म, मोक्ष, ईश्वर आदि के स्वरूप की व्याख्या ही है किन्तु इनके द्वारा

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय गौरीशंकर उपाध्याय, पृष्ठ ४५।

२. वही, पृष्ठ ५७।

३. हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास : डा० लक्ष्मीनारायण लाल, एम० ए०, डी० फिल०, पृष्ठ ११।

तत्कालीन उच्च वर्गीय समाज का एक व्यापक चित्र हमारे सामने ग्राता है। "काव्य की सीमाग्रों के भीतर से वैयक्तिक ग्रन्तर्द्वन्द्वों से सुन्दर संकेत भी यत्र-तत्र मिलते हैं। वर्णन प्रणाली मुख्यत: ग्रलंकृत ग्रादर्शात्मक ग्रौर कल्पना-प्रधान है।"[१] पुराण काल में कथा तत्व न केवल ग्रभिन्न रूप में मौजूद रहा बल्कि पुष्ट भी हुग्रा। इसका कारण पुराणों की कथात्मक प्रकृति है। पुराण कभी-कभी इतिहास का पर्याय बताया जाता है ग्रौर इसीलिए पुराणों में बिखरी कथाग्रों में इतिहास या ग्राख्यान ग्रधिक ग्रौर कथाक्रम कम रहता है। इसमें वृत्त ग्रधिक ग्रौर संवृत कम रहता है। शुद्ध कथाग्रों के रूप में पुराणों की कथाग्रों को नहीं लिया जा सकता।

पुराण काल के बाद लौकिक संस्कृत में लोक-काव्य ग्रौर लोक-नाटक या कहें कि लौकिक विषयों पर रचना होने लगी ग्रौर इस तरह जो कथा केवल तत्व के रूप में ही चल रही थी वह ग्रपने पूरे डील-डौल के साथ सावयव ग्रभिव्यक्त हो चली। कथा तत्व ने ग्रब स्वतन्त्र कथा का रूप ले लिया ग्रौर यदि हमें केवल कथातत्व का ही इतिहास देखना हो तो हमें एक लम्बी कुदान भरनी होगी ग्रौर ईसा पूर्व पुराण साहित्य के बाद की कुछ शतियां छोड़कर छठी सातवीं शती में कथा इत्तर साहित्य रूपों में कथा तत्व की सुरक्षा ढूंढ़नी होगी।

ग्रपभ्रंश में बहुत साहित्य रचा गया ग्रौर साहित्य के करीब सभी रूपों को ग्रपभ्रंश में स्थान मिला।

ग्रपभ्रंश में कथा तत्व का स्वरूप

विद्वानों के ग्रनुसन्धान में ग्रपभ्रंश में लिखित बड़ा ही समृद्ध साहित्य प्रकाश में ग्राया है। यद्यपि यह ग्रधिकांश काव्य है किन्तु इससे कथा-कथन के स्वरूप एवं उसकी परम्परा पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ग्राठवीं शती से लेकर पन्द्रहवीं सोलहवीं शती तक की ग्रपभ्रंश रचनायें मिलती हैं यद्यपि पूर्ण उत्कर्ष दसवीं से बारहवीं शती के भीतर ही दिखाई पड़ता है। कला ग्रौर साहित्य की दृष्टि से जैन ग्रपभ्रंश का स्थान सर्वोपरि है। मुक्तक काव्य ग्रौर कथायें ग्रधिकांश प्रेमकथा 'पउमसिरी चरिउ' धारित कवि की एकमात्र कृति मिलती है। इसके ग्रतिरिक्त श्री चन्द के एक 'कथाकोष' का भी पता मिलता है। इसमें विद्वानों का कहना है कि मनुष्य देव पशु-पक्षी ग्रादि पात्रों के

१. हिन्दी उपन्यास—श्री शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ ४।

माध्यम से अनेक उपदेशात्मक कथायें हैं। प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में कथा का रूप मूलतः काव्यात्मक रहा है। जैसे प्राकृत प्रवन्ध काव्य के अन्तर्गत 'सेतुबन्ध' साहित्यिक महाकाव्य है। 'महावीर चरितादि' प्रबन्धात्मक रचनाएँ हैं तथा वसुदेव हिन्दी और 'सम कहा' गद्य और पद्य मिश्रित कथा कृतियां हैं। मुक्तक के अन्तर्गत 'गाथा सप्तशती', 'वज्जलाग' स्मरणीय है। अपभ्रंश प्रबन्धात्मक काव्य में 'पउमसिरीचरिउ' के अतिरिक्त 'भवसियत्त कहा' और विशुद्ध खण्डकाव्य के अन्तर्गत सन्देशरासक' और व्रतादि से सम्बन्धि त अनेक पद्यबद्ध छोटी-छोटी कथायें मिलती हैं। इन सब का प्रभाव परवर्ती कथा-साहित्य के कथा तत्व पर कितना पड़ा ? इसके उत्तर में हम मध्यकालीन हिन्दी आख्यानक काव्य को रख सकते हैं।

चारण साहित्य में कथातत्व

प्रबन्धात्मक शैली और गीतात्मक शैली में हमें चारण साहित्य मिलता है। एक ओर पश्चिमी हिन्दी में वीर एवं प्रेम काव्यों का निर्माण हुआ दूसरी ओर पूर्वी हिन्दी में सहौजया सिद्धों की साधनात्मक रचनायें प्रणीत हुईं। अपभ्रंश में भी हमें प्रबन्ध काव्य मुक्तक, काव्य दोनों मिलते हैं। इसी के गेय बनाकर इसमें अन्य दन्तकथाओं को जोड़ा जाता था। विषय की दृष्टि से चारण साहित्य मुख्यतः चार विषयों में विभाजित है-- इतिहास, बात, प्रसंग और दास्तान। उनकी परिभाषा चारणों ने यूँ दी है :—

—"जिण खिसा में दराजी रहै सो खिसो इतिहास कहावै
—जिण खिसा में कम दराजी हो, रिक्सो बात कहावै
—इतिहास रो अवयव प्रसंग कहावै
—जिण बात में एक प्रसंग हीज चमत्कारिक होय
तिनका हाल दास्तान कहावै।"[1]

इस प्रकार चारण साहित्य में पद्य को कविता और गद्य को वार्ता कहा गया है। इसी वार्ता को ही 'वचनिका' बात और ख्यात कहा गया है। बात वस्तुतः किस्से और कथा के रूप में आयी है और ख्याति इतिहास के सम्बन्ध में। 'बीसलदेवरासो' 'पृथ्वीराजरासो' इन सब कथात्मक काव्यों में विभिन्न

---

1. A descriptive Catalogue of Bardic and Historical Manuscripts, Section I, Prose Chronicles, Part I by Dr. L. P. Tessitory pp. 6.

कथाओं की परिणति हुई है और इसी भावभूमि पर इनके काव्यात्मक स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई है। इनमें प्रायः एक ही मूलभूत संवेदना है—कि कोई राजा किसी रानी से प्रेम करता है, उससे विवाह होता है, विरह की स्थिति आती है, संयोग होता है अथवा किसी राजा को अपने तमाम विवाहों में अनेक युद्ध करने पड़ते हैं। कथा के इन रूपों में लौकिक भावना अधिक है। यही कारण है कि इनमें से कुछ कथाओं का प्रचलन हमारी लोक भावना में अधिक है और इनका रूप मुख्यतः दन्तकथात्मक हो गया है, फलतः (चारणकाल) ग्यारहवीं शताब्दी से आरम्भ से आगे ही दन्तकथाओं और कथात्मक लोकरुचि ने अनेक लोक गाथाओं की सृष्टि की है।

डा० रामकुमार वर्मा ने चारण काल के उपरान्त ही इस सृष्टिकाल को एक स्वतन्त्र लोक गाथाकाल माना है।[1]

मध्यकालीन हिन्दी आख्यानक काव्य

इनमें हमें प्रेमाख्यानक काव्य सबसे अधिक मिलते हैं। मध्यकालीन इन प्रेमाख्यानक काव्यों में लौकिक, कल्पित अथवा मिश्रित प्रेम कथाओं में आध्यात्मिकता जोड़ी गई और इसके तादात्म्य से हिन्दी में जो आख्यानक काव्य आये उनमें कथाशिल्प और भावात्मकता दोनों अपूर्व ढंग से सिद्ध हुए। ये मध्यकालीन आख्यानक काव्य जैसे कुतबन की 'मृगावती,' जायसी की 'पद्मावत,' मंझन की 'मधुमालती' आदि जहाँ एक ओर अपने वर्णनों, चित्रणों और काव्यात्मक रसात्मिकता में उत्कृष्ट है : वहां दूसरी ओर इनका कथाशिल्प भी परम आकर्षक है। इन कथाओं की चरम परिणति मूल कथाओं में ही होती है। यहाँ कथातत्व अथवा कथानक वस्तुतः इसीलिए इतनी कलात्मकता से प्रस्तुत किये गए हैं कि उस समय जनता उतने बड़े-बड़े प्रेमाख्यानकों को अधिकतर कथा की जिज्ञासा और आग्रह से पढ़ती और सुनती रही होगी, आध्यात्मिकता के आग्रह से उतना नहीं। अतः स्पष्ट शब्दों में इन प्रेमाख्यानकों में कथातत्व युग की वस्तु है और इनकी आध्यात्मिकता कवि की अपनी वस्तु रही है जिसका संचयन वह स्वान्तः सुखाय के लिए करता रहा

---

१. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन'—डा० रामकुमार वर्मा तीसरा प्रकरण, पृष्ठ १३४ (१६७)।

होगा तथा इस विकास के पीछे प्राकृत और अपभ्रंश कथातत्व की प्रेरणा अधिक रही है।"[१]

इसके पश्चात् हमें वार्ता-साहित्य की धार्मिक कथाएँ मिलती हैं जो मुख्यता व्रजभाषा गद्य में लिखी गई हैं और इस वार्ता पर प्राचीन संस्कृत की कथा वार्ता शैली की पूरी छाप है। इसमें यथासम्भव वैष्णव-भक्तों की जीवन सम्बन्धी घटनाओं का वर्णन कथाओं के माध्यम से हुआ है। इसके दो प्रतिनिधि ग्रंथ—(१) चौरासी वैष्णवन की वार्ता, (२) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में कुल चौरासी वार्तायें संग्रहित हैं। इसमें वैष्णवों के जीवन सम्बन्धी विवरण पर थोड़ा सा प्रकाश डाला गया है, जैसे दामोदरदास हर्षिनी की वार्ता। कन्नौज में रहने तिनकी वार्ता आदि। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—ये वार्तायें भी धार्मिक आधार पर लिखी गई हैं। लेकिन इनकी संवेदनाओं में अपेक्षाकृत कुछ अधिक तत्व आये हैं। भावपक्ष में मानव अनुभूतियाँ और उनके चरित्र-चित्रण की ओर आग्रह भी है, जैसे—'वैश्य की बेटी', 'हंसहंसिनि', 'दो ठग', 'दो प्रेत' आदि। इसमें एक छोटी सी कथावस्तु है। एक घटना है और इन दोनों का आरोह-अवरोह भी है तथा इनके विकास की एक सूत्रता भी है। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि हिन्दी गद्य में यह पहला प्रयत्न है जहाँ जीवन की कुछ यथार्थ बातें कथातत्व में ढलकर हमारे सामने साहित्य में आई हैं।

कथा का इतिहास

कथातत्व का इतिहास देखने से स्पष्ट मालूम होता है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में विधा चाहे कोई भी रही हो, कथा वाला अंश और अंशों से सदैव अधिकावश्यक रहा है। ज्यों-ज्यों साहित्य की विधायें एक दूसरे से अलग होती गईं और निजी क्षेत्र में एक दूसरे के निरपेक्ष विकसित और विस्तृत होती गईं, कथा वाला तत्व उनमें विभिन्न रूप लेने लगा और ज्यों-ज्यों गद्य का अधिकाधिक निर्माण होने लगा और कथाओं ने गद्य का आश्रय लिया, कथातत्व केवल तत्व न रहा बल्कि पूरी कथा ही बन गया। इसीलिए जब हम कथा का इतिहास देखते हैं तो शुद्ध कथायें अधिकतर गद्य में ही लिखी मिलती

---

१. 'हिन्दी कहानी की शिल्प-विधि का विकास'—डा० लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ ३१।

हैं। इन कथाओं के लिए पृष्ठभूमि और वातावरण बेशक पुराणों से चले आते हुए कथासूत्रों ने ही तैयार कर रखा था।

दन्तकथाओं का आरम्भ

कथायें तभी से बनी और सुनाई गई जब से मनुष्य ने समाज की कल्पना की। छोटे बड़े सच्चे या अर्धसत्य विश्वासों को लेकर कपोल कल्पित और ऊहात्मक ढंग से कहानियाँ रची जाती रहीं। लेकिन पौराणिक कथाओं के विस्तार तथा प्रसार से जन-मस्तिष्क शीघ्र ही पूर्ण रूप से सुसम्बन्ध हो गया होगा क्योंकि कथा कहने सुनने की प्रवृत्ति ने लोक-रुचि को पौराणिक कथाओं के कहने सुनने की ओर प्रेरित किया होगा। इस तरह इन पौराणिक कथाओं का अधिकांश रूप मौखिक हो गया होगा। यही कथायें फिर दो रूपों में प्रकट हुईं। एक तो लोगों के मस्तिष्क में बांधी गई दूसरी ओर इन कथाओं के आधार पर स्वतन्त्र कथाओं को भी प्रेरणा मिली। इसी कारण दन्त कथाओं के इन दोनों रूपों ने परवर्ती कथा तत्व को पूर्ण रूप से प्रभावित किया। सबसे पहले हम इसका प्रभाव बौद्ध जातक कहानियों में पाते हैं।

जातक

"काल क्रमानुसार जातक कथाओं का स्थान परवर्ती संस्कृत कथाओं के पहले आता है क्योंकि यह कथायें ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी से भी पहले से लेकर ईसा के बाद की प्रथम या द्वितीय शताब्दी तक रची गई होंगी।"[१]

"बौद्ध जातक कथाओं के रूप में भारतीय कथा परम्परा ने एक नवीन मोड़ लिया। ये कथायें अपने वर्तमान रूप में कम से कम दो हजार वर्ष पुरानी हैं।"[२]

जातक शब्द का अर्थ 'जन्म सम्बन्धी' से मानते हैं। बुद्धत्व प्राप्त करने के पूर्व गौतम बुद्ध को अनेक जन्म धारण करने पड़े थे। बुद्ध होने से पूर्व अपने सब पिछले जन्मों तथा अन्तिम जन्म में उनकी संज्ञा बोधिसत्व रही।

"जातक में बोधिसत्व बुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील प्राणी के पाँच सौ

---

१. जातक प्रथम, भूमिका, पृष्ठ २।

२, भदन्त आनन्द कौशल्यायन, जातक प्रथम खण्ड, पृष्ठ २५।

सैंतालीस जन्मों का उल्लेख है।"[१] हर जातक कथा चार भागों में विभक्त है—(१) 'पच्चुपन्न वत्थु' जिसका तात्पर्य है वर्तमान कथा अर्थात् भगवान् बुद्ध के समय की कोई घटना। (२) 'अतीत वत्थु' जिसका आशय है किसी भी ऐसे अवसर पर भगवान् बुद्ध द्वारा कही गई पूर्व जन्म की कथा, (३) 'अत्य-वरणा' अर्थात् इन गाथाओं की व्याख्या जिसमें गाथाओं का शब्दार्थ और विस्तार्थ रहता है, (४) 'समाधान'—यह अन्त में आता है और इसमें बुद्ध बताते हैं कि उन्होंने जो अतीत कथा सुनाई उसके प्रधान पात्रों में कौन-कौन था। वे स्वयं किस योनि में उत्पन्न हुए थे।

"जातक कथाओं में कल्पना तत्व मुख्य है और उनमें जितनी अतीत कथायें आती हैं उनमें प्रायः ऐतिहासिक तत्व मिलते हैं। इस तरह यथार्थ कल्पना और व्याख्या तत्व का एक साथ तादात्म्य, कथा की दिशा में जातक कथाओं की पहली कलात्मक देन है। आगे चलकर इसी के कलात्मक सादृश्य पर उर्दू और अंग्रेजी की प्राचीन कहानियां और अफसाने यों आरम्भ किये गए हैं कि 'एक दफा का जिक्र है' और 'वंस अपान ए टाइम'।"[२] इन जातक कथाओं का समान प्रभाव परवर्ती संस्कृत के कथा-साहित्य पर पड़ा।

संस्कृत का परवर्ती कथा साहित्य

संस्कृत-परवर्ती-कथा-साहित्य में 'वृहत्कथा' का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि प्राचीन संस्कृत कथा साहित्य में यह अति-प्राचीन और सम्मान्य कथा संग्रह माना गया है। वैसे तो हम इन संस्कृत की परवर्ती कहानियों को स्थूल रूप से तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—१. मनोरंजक, २. उपदेशात्मक, ३. काव्यात्मक। प्रथम श्रेणी में वे ही आते हैं जिनमें मनुष्य के क्रिया-कलापों का वर्णन है। इनमें आश्चर्यजनक एवं कौतूहलवर्धक घटना विन्यास के द्वारा श्रोता या पाठक के मन को तल्लीन करने की अद्भुत क्षमता है। 'वृहत्कथा' के साथ-साथ 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' तथा 'बैताल पंचविंशतिका' भी इसी कोटि की रचनायें हैं। उपदेशात्मक कहानियों में 'पंचतन्त्र' तथा 'हितोपदेश' प्रमुख हैं। काव्यात्मक कथाओं के अन्तर्गत 'वासवदत्ता' तथा 'दशकुमार चरित' आदि साहित्यिक आख्यायिकायें आती हैं। इनकी रचना प्रणाली अत्यन्त अलंकृत एवं रसात्मक है।

---

१. भदन्त आनन्द कौशल्यायन, जातक प्रथम खण्ड, पृष्ठ १२।
२. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास—डा० लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ १५।

मनोरंजक कथायें

वृहत्कथा—इसकी रचना दक्षिण के महाराज हाल के राज पण्डित गुनाढ्य ने पैशाची में 'वृहत्कथा' की है। यह प्रथम और पंचम शताब्दी की मानी जाती है। इसकी समस्त कथाएँ श्लोकों के माध्यम से आई हैं, फिर भी इन कथाओं में कथातत्व पर्याप्त मात्रा में है।

कथासरित्सागर—कथावर्णन कला की दृष्टि से उपर्युक्त तीनों ग्रंथों में 'कथा सरित्सागर' सर्वश्रेष्ठ है। इसमें २४००० श्लोक हैं और एक कथा से अनेक कथाएँ निकलती चली गई हैं। मूल कथा तो शिव के द्वारा पार्वती से कही गई बताई जाती है क्योंकि वास्तविक वक्ता वररुचि है और श्रोता विंध्याचल के जंगलों में रहने वाला काणभूति।

प्रत्येक कहानी अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती है, कल्पित पात्रों के अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक, पौराणिक पात्र जैसे—राजा वत्सराज, नरवाहन दत्त, विक्रमादित्य आदि भी आये हैं। स्थल-स्थल पर वररुचि कालीन भारत की वास्तविक झांकियां देखने को मिलती हैं। यह ग्रंथ कथा का सागर ही है।

वैतालपचविंशतिका—इसका उल्लेख हम वृहत्कथा मंजरी और 'कथा सरित्सागर' में पाते हैं। अनुमान विद्वानों का यह है कि इसके लेखक शिवदास थे। इसमें प्रसिद्ध महाराजा विक्रमादित्य से सम्बन्धित पच्चीस रोचक कहानियां सरल संस्कृत में वर्णित है। इन कथाओं का वक्ता शव में बसा हुआ वैताल था जो अपने श्रोता राजा विक्रमादित्य को अपने हठ से तंग करता था। अन्त में एक रहस्य के उद्‌घाटन से राजा का कल्याण होता है।

शुक सप्तति—इस कथा ग्रंथ में कुल सत्तर कथाएं हैं। एक तोते ने अपनी मैना से ये सब कथाएं कही हैं, इसका अभिप्राय स्त्रीवर्ग को अधर्म पंथ से सत्पथ पर लाना है।

सिंहासन द्वात्रिंशिका—इस कथा संग्रह में विक्रमादित्य के सिंहासन में लगी बत्तीस पुतलियों द्वारा कही गई कथाएं हैं जिन्हें राजा भोज सुनते हैं और उस दैवी सिंहासन पर नहीं बैठते।

उपदेशात्मक कथाएँ

पंचतंत्र

समूचा पंचतन्त्र पांच तन्त्रों जैसे—१. मित्रभेद २. मित्र संप्राप्ति ३. काकोलूकीय ४. लब्ध प्राणाशे ५. अपरीक्षित कारके—में संकलित है। प्रत्येक तन्त्र

स्वतन्त्र रूप से अपनी नीति और उपदेश को कहता है। ये कथाएं जिस रूप में कही गई हैं कला की दृष्टि से उनमें जो विशेषताएँ आई हैं वे सर्वत्र स्पष्ट हैं। प्रायः सभी तन्त्रों की मुख्य संवेदनाएं नीति सम्बन्धी हैं यद्यपि कथाओं का रूप पूर्णतः वर्णनात्मक है।

हितोपदेश

"बंगाल के राजा धवलचंद्र के आश्रित नारायण पडित ने चौदहवीं शताब्दी में हितोपदेश की रचना की।"[1] पंचतन्त्र की ही भाँति हितोपदेश भी नीतिग्रंथ है तथा जिस उद्देश्य को लेकर पंचतन्त्र की कथाएं आई हैं उसी उद्देश्य से हितोपदेश की भी कथाएँ आई हैं। इसमें कुल १. मित्रलाभ, २. सुहृदभेद, ३. विग्रह और ४. संधि चार प्रकरण हैं। प्रत्येक प्रकरण का अपना एक साध्य बिन्दु है। इसी के प्रकाश में उस प्रकरण की सारी शिक्षाएँ आती हैं और उस शिक्षा के ही अनुरूप उस प्रकरण की कथायें भी आई हैं। समस्त कथाओं के पात्र प्रायः पशु-पक्षी हैं तथा संस्कृत देव-अदेव पात्र शिक्षाप्रद कथायें कहते रहते हैं। इनका मुख्य लक्ष्य शिक्षा है और कथातत्व इनके साधन मात्र है। फिर भी परवर्ती संस्कृत कथासाहित्य में ये दोनों ग्रंथ अद्वितीय हैं।

अर्धकाव्यात्मक कथाएँ

इस कोटि की कथाओं में सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता', बाणभट्ट कृत 'कादम्बरी' 'हर्षचरित' और दण्डी कृत 'दशकुमार चरित' प्रमुख है। आलोचकों का मत है कि इनके लेखक सातवीं शताब्दी में हुए हैं यद्यपि वासवदत्ता नायिका का नाम प्राचीन है। कथा, लेखक के मस्तिष्क की उपज है। इसमें कथावस्तु अत्यल्प है। काव्यमय वर्णन में ही सम्पूर्ण रमणीयता है। इसी प्रकार 'हर्षचरित को विद्वान लोग संस्कृत की पहली आख्यायिका मानते हैं। इसमें राजा हर्ष की कथा सरस शैली में वर्णित है। 'कादम्बरी' भी अनुपम कृति है। इसमें हमें आदर्श प्रेम की झांकियां मिलती हैं। इसमें पूर्व जीवन सम्बन्धों को वर्तमान जीवन से कलात्मक ढंग से ग्रथित किया गया है। ग्रंथ का वस्तु-विन्यास, घटनाओं का तारतम्य, भावमग्न करने वाली परिस्थितियां तथा संवादों की योजना, प्रकृति-निरीक्षण, कल्पना की रमणीयता, आदर्श एवं यथार्थ का समन्वय आदि आज भी लोगों के अध्ययन, मनन, अनुकरण के विषय बन सकते हैं। 'दशकुमार चरित' में दण्डी

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ३७८।

ने तत्कालीन समाज का व्यंग्य और विनोद से युक्त बड़ा ही सुन्दर तथा यथार्थ चित्रण अपने ग्रंथों में किया है।

लोक गाथाएं :

चारण काल के साहित्य के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की लोक गाथायें गद्य एवं पद्य में प्रणीत होकर लोक रंजन करने लगी। ये सब इतिवृति संसार के भौतिक प्रेम के धरातल पर खड़े किये जाते थे और अन्त में इनके द्वारा इस भौतिक संसार की निस्सारता सिद्ध की जाती थी। इन लोक-गाथाओं में गीतात्मकता प्रमुख विशेषता है। इसके अतिरिक्त इनमें जातीय सांस्कृतिक परम्परा, प्रकृति सौन्दर्य, जीवन की सरलता और तरलता, अलौकिक प्रभाव तथा मानव और अमानव का सम्बन्ध इनकी अनेक विशेषतायें हैं। भावपक्ष की दृष्टि से इनमें सर्वत्र व्यक्तिगत और पारस्परिक परिस्थितियाँ भी समान रूप में वर्तमान रहती हैं, जैसे नायक और नायिका में पूर्वानुराग, वियोग, बारहमासा चित्रण आदि। समस्त लोक गाथायें हमें तीन रूपों में मिलती हैं—१. पद्यात्मक, २. गद्यात्मक, ३. मिश्रित रूप। पद्यात्मक रूप में प्रसिद्ध लोकगाथायें ढोला मारूहा दूहा[1] और माधवानल कामकंदला हैं[2]। इनमें कथा तत्व का सूत्र सुरक्षित और पुष्ट होता रहा है। गद्य रूप में 'वैताल पचीसी', 'सिंहासन बतीसी' की कथा बगले हंसिनि की कथा फुटकर वार्ता रूप में है। 'फुटकर वार्ता रो संग्रह' में डा० एल० पी० टैसीटरी ने अनेक कथाओं का संग्रह किया है, जिनके कथाकार अलग-अलग चारण हैं, जैसे—'देवीनायक—देरी बात', बुधिमल कथा दो कहानियां आदि मिश्रित रूप में—'मदन सतक', 'चन्द्रकुंवर री बात', 'बीजा सोरठ री बात' इनके सुन्दर उदाहरण हैं। इन सब कथाओं का आधार प्रेम है। इन सबके निर्माण और सृष्टि में संस्कृत परवर्ती कथासाहित्य, दन्तकथाओं, इतिहास और कल्पना का सामूहिक हाथ है। इस तरह इन लोक गाथाओं ने अपने पूर्ववर्ती कथासाहित्य के प्रकारों का अपने रूपों में इतनी सुन्दरता से समन्वय किया है कि उनमें जहाँ एक ओर विभिन्न कथा शैलियों का समावेश है, दूसरी ओर उनमें उपदेश, नीति, शिक्षा, इतिहास व्यक्ति और समाज सबसे तादात्म्य स्थापित हुआ है। ऐसा एक स्थान पर कैसे सम्भव हुआ ? उनका

---

१. ढोला मारूहा दूहा—काशी ना० प्रचा० सभा से प्रकाशित, १६६१ वि०।
२. संपादक एम० आर० मजूमदार : ओरियन्टल इंस्टीच्यूट—बड़ौदा।

सीधा सा उत्तर है कि साहित्य का कथा पक्ष बहुत सरलता से जनरुचि में स्थान कर लेता है, और जनरुचि की दंतकथात्मक, मनोरंजनात्मक शक्ति तथा प्रेम और वीरता की प्रेरणा उनमें अनायास ही कितनी लोक गाथाओं की सृष्टि करती रहती है।"[1]

"उपर्युक्त गाथाओं में जितनी प्रमुख गाथाएं हैं जैसे—"ढोला मारूहा" और "कामकंदला" इनका आधार प्रेम है। इन प्रेम-गाथाओं का जन-भावना में इतना स्थान है कि इनके विभिन्न रूप अथवा इनके सादृश्य पर बने और भी प्रेम-गाथाएं हमें अन्य जनपदीय बोलियों में मिलती है। फलतः यही लोकगाथा काल हमारे जनपदीय साहित्य का विकास काल है और इसी साहित्य के प्रभाव से हमारी ग्राम कथाएं, प्रेम कथाएं आज भी विकसित होती रहती हैं, लेकिन विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से इन लोकगाथाओं का आरम्भ जैन कवियों की वैराग्यपूर्ण रचनाओं से प्रारम्भ हुआ लौकिक प्रेम-कथाओं में इनका पूर्ण उत्कर्ष हुआ और प्रेमाख्यानक काव्यों में इनका पर्यवसान हुआ।"[2]

पश्चिमी और हिन्दी कहानी का इतिहास :

जिस तरह प्राचीन भारतीय साहित्य के आरम्भ के साथ ही कथातत्व का आरम्भ भी मिलता है उसी तरह पश्चिम में भी प्राचीनतम वांग्मय के भीतर से कथा तत्व उद्भूत हुआ और विकास करता गया। कथा यूनान और मिस्र में भारत के समानान्तर समृद्ध और सम्पन्न मिलती है। ईसा से कई हज़ार वर्ष पूर्व और प्रसिद्ध काव्यों "इलियड" और "ओडेसी" की रचना से पूर्व कई कहानियां मिलती हैं। "मिस्र में 'ख़फरी की कहानी' ई० से चार हजार वर्ष पूर्व की है। यूनान में 'शाही खज़ाना' नाम की कहानी इसके बाद लिखी गई।"[3] 'इलियड' और 'ओडेसी' भारत के रामायण और महाभारत के समान विशाल, विस्तृत काव्य है, जिनमें उन दिनों पश्चिम में प्रचलित युद्धों और प्रेम की सैकड़ों छोटी-बड़ी कहानियाँ पिरोई गई हैं। कथाओं में साहस और रोमांच की गाथाएं दैवी और आदि-भौतिक शक्तियों द्वारा घटायी जाती हैं। इनमें घटनाएं प्रधान

---

१. हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास—लक्ष्मी नारायणलाल, पृष्ठ २६।

२. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन—डा० रामकुमार वर्मा, पृ० १४५।

३. हिन्दी कहानी की शिल्पविधि का विकास।

हैं और कथातत्व ही प्रमुख है। 'ओडेसी' के रचयिता होमर और इलियड के रचयिता वर्जिल पश्चिमी साहित्य के लिए वाल्मीकि और व्यास जैसे ही प्रेरक रहे हैं। कथासूत्र आगे चलकर मुख्य रूप से इत्तालवी कवि दांते ने उठाया और अपने महाकाव्य "डिवाइन कामेडी" में रहस्य की सृष्टि करके उत्सुकता, रोमांच और प्रतीकों की सृष्टि की। परवर्ती लेखक बोकैश्यों की समाज चेतना के फलस्वरूप पश्चिमी कथा तत्व में शीघ्र ही यथार्थ और कल्पना के आधार पर तीव्र वृद्धि होती रही और इसलिए कहानी अधिकाधिक मांसल और वस्तुपरक हो गई।

अंग्रेजी-अमरीकी कहानी ; यूरोपी कहानी विशालतर :

उन्नीसवीं शती के आरम्भ में ही अमरीकी कहानीकार "ऐडगर एलन पो" ने आधुनिक दृष्टि से कहानी को जन्म दिया जिसके बाद न केवल अमरीकी साहित्य में अपितु यूरोप के अंग्रेजी, फ्रांसीसी या रूसी के साहित्यों में भी कहानी स्वतन्त्र रूप से विकसती गई। खुद अमरीका के उन्नीसवीं शती के कहानीकारों में नैथियल हाथरन, ब्रट हार्ट, ओ हेनरी, शेरवुड, अंडरसन, सिंक्लेयर लेविस, हेमिंगवे, स्टीव बैक, स्टीफन क्रीन, फाकनर, प्रभृति कहानीकारों ने अंग्रेज़ी भाषा की कहानी को काफी उन्नत किया। आलोचकों का यह मत ठीक है कि अंग्रेजी कहानी को खुद अंग्रेज कहानीकारों ने उतना योगदान नहीं दिया जितना अमरीकी कथाकारों ने। लेकिन अंग्रेज़ी कहानी से अधिक फ्रांसीसी कहानी पनपी—"अमरीकी कहानी धारा की अपेक्षा मोपांसा फ्लावेयर आदि फ्रांसीसी कहानीकारों में कुछ अधिक रंगीनी चपलता और क्रियाशीलता थी।"[1] इनके अतिरिक्त बालजक वीलतेयर जोला विश्व प्रसिद्ध कहानीकारों में गिने जाते हैं। जिस तरह अंग्रेजी कहानियों के इतिहास में "गढ़ और पैण्डुलम" (पो) दोहराई हुई कहानियां (हाथरन) "ध्वनि-चित्र और कला" (ओ हेनरी), दार्शनिक (अंडरसन) "बूढ़ा पुल पर" (हेमिंगवे) मील के पत्थर माने जा सकते हैं उसी तरह मोपासां की "हार" फ्रांसीसी कहानी साहित्य में प्रमुख स्थान रखती है। आधुनिक कहानी का विकास पुश्किन और दास्तावस्की ने रूसी में किया। पुश्किन की कहानियाँ रूस के जनजागरण और भावी क्रान्ति का सन्देश देती हैं। दास्तोवस्की जिस तरह मानव मन में डूब सके उसकी तुलना शायद ही विश्व के किसी कहानीकार से की जा सके। इनकी प्रथम कृति "बेचारे लोग"

१. हिन्दी कहानी की शिल्पविधि का विकास।

ने ही इन्हें अमर बना दिया। लेव टालस्टाय रूसी क्रान्ति की देहरी पर खड़े थे और इस तरह उन्होंने जागरण शील राष्ट्र के बनते और ढहते व्यक्तिगत विश्वासों और आस्थाओं की कहानियाँ लिखीं जिनमें "कज़ाक", "इवान इलिच की मृत्यु", "लम्बा प्रवास" प्रमुख है। अन्तन चेखव तालस्टाय के समकालीन थे लेकिन कहानी के क्षेत्र में तालस्ताय ही क्या विश्व भर में अग्रगण्य हैं। सुगठित तथा लघु कथानकों में इन्होंने जारशाही के फैलते हंत्रास तले दबते जा रहे साधारण रूसी का मर्मस्पर्शी वर्णन किया। "एक क्लर्क की मौत", "गिरगिट" और 'घूंघट" इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। तुर्गनेव और गोर्की रूसी कहानी के अमर शिल्पी हैं। गोर्की ने उत्तर-क्रान्ति के रूस के बदले हुए सामाजिक परिवेश को कथाबद्ध किया।

आधुनिक बोध :

यदि अमरीकी कहानी ने अंग्रेज़ी कहानी को विस्तार और गहराई दी फिर भी खुद अंग्रेज़ कहानीकारों ने उसमें कम विविधता पैदा नहीं की। डिकिन्ज़ हो या स्टीवनसन आर्थर कानन डाइल हों या वेल्ज़, अंग्रेज़ी कहानी को जीवन के विविध रूपों से परिचित कराया गया। लारेन्स के बाद तो अंग्रेज़ी कहानी उतनी विकसित नहीं हो सकी जितनी उदाहरणतः अंग्रेज़ी कविता। लेकिन जहाँ तक कहानी के आधुनिक बोध का सम्बन्ध है वह खुद अंग्रेज़ी कहानी ने फ्रांसीसी या जर्मन कहानी से लिया। फ्रांसीसी के "सार्त्र" या "कामू" जर्मन के काप का आज भी अंग्रेज़ी कहानी को आधुनिक संवेदना से परिचित कराते हैं।

अनुवादकों के बीच से मूल कहानीकारों का विकास

प्राचीन भारतीय वांग्मय में कथातत्व और कथा का इतिहास देखते हुए और पश्चिम में आधुनिक कहानी का उद्‌भव और विकास जानकर हम हिन्दी कहानी के स्वतन्त्र इतिहास का अध्ययन कर सकते हैं। हिन्दी में गद्य के आरम्भ के साथ ही भाषा-योग-वशिष्ठ (रामप्रसाद निरंजनी), प्रेमसागर (लल्लूलाल), नासिकेतोपाख्यान (सदल मिश्र), रानी केतकी की कहानी (इंशाअल्ला खां), "वैताल पंचविशतिका" (सूरति मिश्र) आदि लिखी गई। हिन्दी में कथा लेखन की प्रेरणा का एक प्रमुख कारण अनुवादों का आना था। एक तो संस्कृत नाटकों के संक्षिप्त अनूदित कथारूप प्रकाशित होने लगे और दूसरे पश्चिमी रचनाओं विशेषकर शेक्सपियर के नाटकों के अनुवादों ने कहानी के लिए वातावरण तैयार किया। अंग्रेजी में चार्ल्स लैम्ब के "टैल्ज फ्राम शेक्सपियर" पर

"हिन्दी शेक्सपियर" लिखा गया। इसके अतिरिक्त अनेक नाटकों के समर्थ लेखकों द्वारा अनुवाद हुए, उनमें भारतेन्दु, पुरोहित गोपीनाथ, मथुराप्रसाद उपाध्याय प्रमुख हैं। अनुवादों में शब्दश: निश्चितता पर जोर नहीं दिया गया अत: यह भावानुवाद ही रहे। भारतेन्दु युग में शिवप्रसाद ने प्रसिद्ध "राजा भोज का सपना" लिखा और स्वयं भारतेन्दु ने "एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न" लिखकर प्राचीन पुराण शैली की परम्परा से हटने का प्रयत्न किया। वास्तव में हिन्दी कहानी "सरस्वती" के प्रकाशन से विकसित हुई। द्विवेदी युग गद्य का युग था और इसलिए सरस्वती और बाद में "इन्दु" में कहानियाँ ही प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हुईं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानियों में "इन्दुमती" १९०० (किशोरीलाल गोस्वामी), ग्यारह वर्ष का समय (१९०३ शुक्ल), "धुलाई वाली" (१९०७—बंग महिला) उल्लिखित की हैं। जो भी हो यही समय था जब हिन्दी कहानी में नयी परम्पराओं का सूत्रपात हुआ। यह द्विवेदी युग के उस गद्य और विशेषकर कहानी आन्दोलन का ही नतीजा था कि सुदर्शन "कौशिक" ज्वालादत्त शर्मा, प्रेमचन्द, प्रसाद, हृदयेश और गुलेरी जैसे कहानीकार पैदा हुए। हिन्दी कहानी के अगले तीस साल इन्हीं कहानीकारों के स्वतंत्र और परस्पर प्रभावकारी प्रयत्नों की कहानी प्रस्तुत करते हैं। द्विवेदी जी द्वारा संपादित "सरस्वती" और प्रसाद की "इन्दु" से स्तरीय पत्रिकाओं की शुरूआत हुई। आगे चलकर पत्र पत्रिकाएँ छपतीं और कहानियों को निमन्त्रित करती और लिखाती रहीं। कहानियाँ समकालीन भारतीय जीवन के संक्रान्त परिवेश के विभिन्न पक्षों को लेती रही। यह युग राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भारत के लिए कठिन परीक्षा और संक्रान्ति का युग था। स्वदेशी आन्दोलन हरिजनोद्धार, नारी स्वतन्त्रता और समानता वर्ग शोषण आदि इस समय के चलते प्रश्न थे। विश्वयुद्ध भारत को बाहर से और स्वाधीनता संग्राम भीतर से झकझोरता रहा। ऐसे में प्रसाद और प्रेमचन्द ने कहानियाँ लिखीं और हिन्दी में क्रमश: यथार्थवादी और भाववादी शैलियों का सूत्रपात हुआ।

यथार्थ और भावमूलक कथाकार :

हिन्दी कहानी के दूसरे दशक से लेकर चौथे दशक तक प्रेमचन्द और प्रसाद छाये रहे। इन दोनों की कहानी का विकास करीब-करीब एक ही ढर्रे पर हुआ। डा० लक्ष्मीनारायणलाल ने इन दोनों का ऐतिहासिक विकास दिखाकर

यह बात स्पष्ट की है। प्रेमचन्द की कहानी कला के विकास के तीन चरण इन्होंने ये बताये हैं[1] :—

(क) प्रथम काल — १९०७ से १९२० तक
(ख) द्वितीय काल — १९२० से १९३० तक
(ग) तृतीय काल — १९३० से १९३६ तक

इसी तरह उन्होंने प्रसाद की कहानियों का कालक्रम इस तरह बाँटा है[2]—

(क) प्रथम काल — १९११ से १९२२ तक
(ख) द्वितीय काल — १९२३ से १९२९ तक
(ग) तृतीय काल — १९३० से १९३७ तक

प्रेमचन्द ने खुद अपनी कहानी की विकास यात्रा आदर्श से शुरू होकर यथार्थोन्मुख तक हुई—बताया है। उनकी आरम्भिक अथवा सप्त-सरोज की कहानियाँ (बड़े घर की बेटी, पंच परमेश्वर, नमक का दारोगा) आदि किसी न किसी आदर्श पर आधारित हैं लेकिन फिर "सत्याग्रह" या "महातीर्थ" जैसी कहानियों में आदर्श यथार्थोन्मुख होता जा रहा है। दूसरे काल की कहानियों में प्रेमचन्द की कथानक के साथ सहकथानक लिये जाने की प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। चरित्र अधिकांश विरोधी शक्तियों के साथ समझौता करने को प्रवृत्त हैं। चरित्रों को कहानीकार की भूमिकायें उभरने में सहायता देते हैं और वातावरण बाँधा जाता है। प्रेमचन्द की कहानियों का विकास हमारे सामने "गुली डंडा" "अलग्योझा", "पूस की रात" और "नशा" जैसी कहानियाँ प्रस्तुत करता है। प्रेमचन्द समाज के वातावरण और चरित्रों को अपनी संवेदना और र गात्मक सम्बन्ध से बांधते हैं। वे घटना की अपेक्षा अनुभूति को महत्व देते हैं। स्वयं प्रेमचन्द ने अपने बारे में जो लिखा है वह इनकी उत्कृष्ट कहानियों और इस युग की दूसरी अच्छी कहानियों पर ठीक लागू होता है—"गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। आज लेखक कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैठता। उसका उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं। वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है जिसमें सौन्दर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं का स्पर्श कर सके।"[3] प्रेमचन्द ने पहली बार हमारे

१. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ० ९८।
२. वही, पृ० १८५।
३. मानसरोवर (प्रथम भाग) भूमिका, पृ० १।

समाज के निम्न-मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग का मर्मस्पर्शी चित्रण किया। समाज के गले सड़े अंग को अनावृत्त किया और मनुष्य की भीतरी सुन्दरता का स्पर्श किया। प्रेमचन्द का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि उनकी ही विशेषताएं कई दूसरे समवर्ती कहानीकारों की विशेषताएँ बन गईं। कहानी के प्रेमचन्द-युग में कौशिक, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि कहानीकारों के नाम मिलते हैं।

दूसरी ओर प्रसाद का कहानी साहित्य भावप्रवण था। यथार्थ की अपेक्षा कल्पना की लय और संगीत उनकी कहानियों में बजता है। प्रसाद स्वयं छायावादी कवि थे और एक महान चिन्तक भी। उनका चिन्तन पक्ष उनकी कहानियों में हर कहीं झूलता है। स्वयं 'इन्दु' मासिकी सम्पादित करके उन्होंने काफी कहानियाँ लिखी, जो पाँच संग्रहों में संकलित हुईं। इनकी आरम्भिक कहानियाँ केवल रेखाचित्रों सी हैं। कहीं-कहीं संकेत या व्यंजना प्रमुख हो उठती है लेकिन शैली की दृष्टि से अधिकांश गद्य-गीतों-सी है (अगोरी का मोह, करुणा की विजय, प्रलय, दुःखिया आदि)।

प्रसाद का अधिकांश साहित्य भारतीय इतिहास के स्वर्ण-युग की गाथा सुनाता है। इसके कई कारण थे। जो भी हो यह कहानियाँ इतिहास को एक निश्चित व्याख्या में बाँधने के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। 'आकाशदीप', 'देवदासी', पुरस्कार जैसी कहानियाँ न केवल प्रसाद-साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती हैं अपितु समवर्ती कहानियों के लिए आदर्श का काम करती हैं। प्रसाद की विकसित और कालक्रम में अन्तिम कहानियों में 'आंधी', इन्द्रजाल', 'गुण्डा', 'देवरथ', और 'सालवती' गिनी जा सकती हैं। इनमें कथावस्तु तो थोड़े महत्व का है ही चरित्र और वातावरण विशिष्ट और प्रभावशाली हो उठते हैं। प्रसाद वास्तव में एक समूचे युग, एक समूची भावधारा के बाँधने में अपनी संवेदना को इतना विस्तृत कर देते थे कि कहानी की भावभूमि बहुत लम्बी-चौड़ी हो जाती थी। यह सत्य देश, काल, परिस्थिति तीनों दिशाओं में चरितार्थ होता है। स्वयं प्रसाद ने 'पत्थर की पुकार' नामक कहानी में स्पष्ट अपने कहानी लिखने के अभिप्राय को प्रकट किया है। "अतीत और करुणा का अंश जो साहित्य में है वह मेरे हृदय को आकर्षित करता है।" इस तरह प्रसाद का साहित्य करुणा, प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द और आदर्श का प्रतिष्ठापक है। प्रसाद-संस्थान के चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्णदास, उग्र, विनोदशंकर व्यास आदि हैं।

उत्तर-प्रेमचन्द-त्रिमूर्ति

प्रेमचन्द-प्रसाद युग के बाद हिन्दी कहानी में संक्राति आयी और नई विचारधाराओं ने हिन्दी कथाकार को झकझोरा। मानववाद का नया दर्शन, बुद्ध की करुणा, महावीर की अहिंसा और गाँधी के सत्य के आधार पर बनी और पनपी तथा महायुद्ध की विभीषिका से संत्रस्त मनुष्य की भावना की पुनः स्थापना से विकसी। कथाकार मनोविज्ञान का सहारा लेकर मनुष्य के भीतर पैठा और मनुष्य की विद्रोह, पाप, अपराध जैसी भावनाओं का विश्लेषण किया जाने लगा। पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों जैसे फ्रायड, युंग और ऐडलर की मनो-व्याख्याओं का सहारा लिया गया। सामाजिक सम्बन्धों की 'मार्क्सवाद' द्वारा की गई व्याख्या प्रभावशाली सिद्ध हुई और हिन्दी कथाकार ने भी सर्वहारा वर्ग को अपनी पीड़ाओं के साथ कहानी में आसीन किया। हम कह सकते हैं कि प्रसाद-प्रेमचन्दोत्तर युग में हिन्दी कहानी आधुनिक जीवन दृष्टियों को आत्मसात् करने लगी। जैनेन्द्र कुमार ने मन के स्वप्नों और तन की इच्छाओं से प्रवर्तित मनुष्य जीवन का चित्रण किया (जाह्नवी, देशी, परावर्तन) इलाचन्द्र जोशी ने व्यक्ति के अहंभाव की एकांतिकता पर निर्मम प्रहार किये (चरणों की दासी, परित्यक्ता, एकाकी) भगवतीचरण वर्मा ने रेखाचित्रों-सी छोटी कहानियों में जीवन के छोटे मोटे प्रश्न प्रस्तुत किये जैसे—'दो बांके' 'इन्स-टालमेन्ट', 'प्रेजेन्टस'। उपेन्द्रनाथ अश्क ने यथार्थ जीवन में मनोवैज्ञानिक उलझनें ढूंढ़कर उन्हें आसानी से सुलझाना चाहा जैसे इनकी 'तीन सौ चौबीस', 'नरक का चुनाव', 'कांगड़ा का तेली' या 'बैंगन का पौधा'। यशपाल आरम्भ से ही मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण कहानियों में सामाजिक यथार्थ का ही चित्रण करते रहे और पुरातन धार्मिकता और परम्परा की कटु आलोचना से शुरू करके आधुनिक आर्थिक शक्तियों और उनसे प्रेरित सामाजिक सम्बन्धों को कहानियों की विषय-वस्तु बनाया—जैसे फूलों का कुर्त्ता', 'ज्ञानदान', 'आदमी का बच्चा' आदि कहानियाँ। इसी युग में अज्ञेय का कहानी साहित्य भी गणनीय है। इन्होंने भी राजनीति के ऊहापोह को झेला और सामाजिक अव्यवस्थाओं से प्रभावित हुए। लेकिन दृष्टि और निर्वाह में इनकी कहानी औरों से भिन्न और मौलिक है। इनकी प्रायः हर कहानी में कोई व्यंग्य छिपा रहता है जो इनके अपने व्यक्तित्व और अनुभव की उपज होता है। इनके व्यक्तित्व में व्यक्तिवादिता पर निष्ठा, अहं का विकास और निरन्तर विद्रोह

के तत्व हैं और यह विशेषतायें इनकी कहानियाँ 'रोज़', 'कोठरी की बात', 'पठार का धीरज', 'नं० १०', 'मनुष्य का भाग्य', 'आदम की डायरी', 'जय दोल' आदि में मिलती हैं।

नयी कहानी :

इसी युग के भीतर से हिन्दी कहानी में एक नये युग का आविर्भाव हुआ जिसके दो चरण थे। पहले चरण में दूसरे महायुद्ध से प्रेरित और प्रभावित हिन्दी कहानीकार पीढ़ी आती है। भारत में तो महायुद्ध के तुरन्त बाद ही स्वतन्त्रता की घोषणा हुई। अभिलाषाओं, आकांक्षाओं की पूर्ति केवल राजनीतिक भाषणों में हुई और जनसाधारण का आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्तर काफी गिर गया। जो आशा स्वाधीनता प्राप्ति के साथ बंधी थी वह झूठी और प्रपंचमात्र सिद्ध हुई। ऐसे में एक नया यथार्थ उभरा जिसे कहानी क्षेत्र में सबसे अधिक प्रगतिवादियों ने पहचाना और अभिव्यक्त किया। ऐसे कहानीकार पहले के से प्रगतिवादियों जैसे न थे जो नारे में अधिक और शुद्ध साहित्य में कम विश्वास रखते थे और जिन्होंने साहित्य को मार्क्सी विचारधारा का प्रचार साधन बनाना चाहा था। ये लेखक आस्था उसी वाद में रखते थे लेकिन इन्होंने युग की प्रतिक्रिया समझ-परख कर समसामयिक यथार्थ को चित्रित किया। आज की कहानी को ठोस और वस्तुपरक आधार देने का श्रेय इन्हीं कथाकारों को है। इनमें मार्कण्डेय, अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त, कमल जोशी, भीष्म साहनी आदि प्रमुख हैं। उसके बाद हिन्दी कहानी ने जो नया रूप धारण किया वह नयी कहानी कहलाया और आधुनिक हिन्दी कविता की नयी कविता ही की तरह आधुनिक भाव-बोध और सामाजिक परिवेश का सफल वाहन बन गया।

लघुता का पक्षपात :

इन कहानीकारों ने नये यथार्थ का नयी संवेदना से अनुभव किया और नये ढंग से पेश किया। इस विधा का नाम 'नयी कहानी' करीब करीब हिन्दी की 'नयी कविता' के समानान्तर रखा गया और जिस तरह 'नयी कविता' में समसामयिक यथार्थ को कवि निजी स्तर पर समझता और प्रकट करता है उसी तरह 'नयी कहानी' में भी यथार्थ को कहानीकार अपनी ही अनुभूति के स्तर पर जाँचता और प्रकट करता है। नये लेखक ने समझ लिया है कि आदर्श साक्षी होता है इसलिए वह अपने अनुभव पर बल देना चाहता है और

इसी स्थिति से यह आकांक्षा उभरती है कि कितना ही तीखा क्यों न हो पर जुड़ना अपने यथार्थ से ही है।"[१] यही वजह है कि 'नयी कहानी' आदर्शों की अपेक्षा यथार्थ पर बल देती है और आज के यथार्थ और पुराने यथार्थ में अन्तर है। यशपाल, जनेन्द्र या प्रेमचन्द की कहानी का यथार्थ फिर भी आदर्श-वादी था क्योंकि उसमें कई चीजें जैसे विकृति, अनैतिकता, अश्लीलता, अमानवीयता, बुराई आदि सदा के लिए यहीं रूप लिये रहते और चरित्र और समाज के किन्हीं भी स्थितियों में ऐसे ही बने रहते। लेकिन नया कहानीकार इन्हें सर्वथा स्थिर और एकरूप नहीं मानता। उसकी दृष्टि में इन मूल्यों को चरित्र से और उसकी सामाजिक दशा से निरपेक्ष नहीं देखा जा सकता। वास्तव में आज के सन्दर्भ में इसी तथाकथित बुराई की 'सिग्निफिकेन्स' का भाव होता है क्योंकि हर बुराई के पीछे एक प्रश्नशील मस्तिष्क होता है। जो आज के युग की निराशा, अनास्था, ऊब, बुराई और अनैतिकता की समी-चीनता प्रकट करता है। नये कहानीकारों में ज्ञानरंजन, दूधनाथसिंह, राम कुमार, प्रयाग शुक्ल, महेन्द्र भल्ला आदि प्रमुख हैं। लेकिन नयी कहानी के शिल्पियों में तीन चार प्रथम श्रेणी के कहानीकार हैं—राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश और 'रेणु'।

आंचलिकता : नया नामकरण अधिक :

जिन साहित्यिक मूल्यों से कहानी में नया यथार्थ जानने और प्रकट करने की संवेदना पैदा हुई और 'नयी कहानी' ने जन्म लिया। उन्हीं के प्रेरणास्वरूप 'आंचलिक' कहानी भी जन्मी। जब रेणु का पहला उपन्यास 'मैला आंचल' प्रकाशित हुआ तो ख्याति प्राप्त करने के साथ ही वह आंचलिक उपन्यास घोषित हुआ। शायद उसका 'आंचलिक' नाम उपन्यास के नाम-विशेष के कारण ही प्रचलित हुआ क्योंकि ग्रामांचलों पर 'मैला आंचल' से पहले भी उपन्यास प्रकाशित हुए थे। अधिक दूर न जायें तो 'नागार्जुन' पहले ग्रामां-चलिक उपन्यासकार ठहरते हैं। उनके 'बलक्षनमा' और 'वरुण के बेटे' उपन्यास पहले ही विख्यात हो चुके थे। शैलेश मटियानी के 'हौलदार', 'कबूतरखाना' आदि भी आंचलिक उपन्यास ही थे यद्यपि इनको (आंचलिक) बाद में ही कहा गया। मटियानी ने बम्बई के नगरांचल को लिया और उसमें रहने वाले

---

१. नयी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति, पृ० २०२।

निम्न वर्ग को चित्रित किया। राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित' ने आदिवासियों के जीवन का अध्ययन करके कई आंचलिक उपन्यास लिखे। इसके अतिरिक्त मार्कण्डेय भैरवप्रसाद गुप्त आदि ने भी आंचलिक कहानियाँ और उपन्यास लिखे। हिन्दी में आंचलिक कहानियों का इतिहास ज्यादा बड़ा नहीं लेकिन इतना छोटा सा इतिहास होते हुए भी 'नयी कहानी' की इस विधा ने हिन्दी कहानी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है और हिन्दी के पाठकों और आलोचकों के चिन्तन, मनन और आकर्षण का बिन्दु बनी हुई है। यही इसके महत्व को दिखाता है।

———

परिच्छेद तीन

"धूल भरा मैला सा आंचल"

'मैला ग्रांचल' ग्रौर ग्रंचल,

मैले ग्रांचल का मोह,

'तीसरी कसम' का कथांचल; सर्वहारा का गीतकार,

विश्वास का केन्द्र : ग्रंचल का घेरा,

टोले का ग्रंचल : गाँव का ग्रंचल,

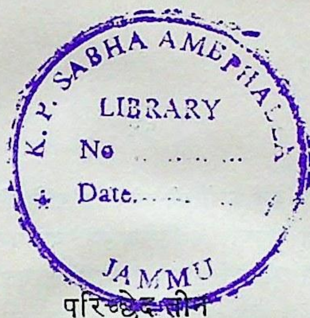
निर्वाह की ग्रांचलिकता,

विविध शहरी ग्रंचल; ग्राग्रहों ग्रौर भूलों की मानव-स्थितियाँ,

ग्रांचलिकता मात्र एप्रोच है,

नगण्य घटनाग्रों का ग्राधार,

ज़रा सी बात की समस्या।



परिच्छेद तीन

"धूल भरा मैला सा आंचल"

प्रस्तुत प्रबन्ध के पहले परिच्छेद में यह स्पष्ट किया गया है कि हिन्दी गल्प के इतिहास में 'ग्रांचलिक' नाम एक शैली विशेष के लिए तभी प्रचलित हुग्रा जब फणीश्वरनाथ रेणु ने ग्रपना पहला उपन्यास 'मैला ग्रांचल' प्रकाशित किया। यह शैलीगत प्रवृत्ति यद्यपि रेणु से पहले ही शुरू हुई थी लेकिन इसका कोई विशेष नाम नहीं चल पड़ा था। पहले परिच्छेद में इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। रेणु ने इस उपन्यास का नाम 'मैला ग्रांचल' इसलिए नहीं रखा कि वे ग्रांचलिक नाम के जैसे किसी उपन्यास की रचना करना चाहते थे। उनके इस उपन्यास के नामकरण के विशेष कारण हैं जिनका विश्लेषण करने से 'ग्रांचलिक' शैली की कहानियाँ या उपन्यासों के बारे में निश्चित मत प्रकट किया जा सकता है। रेणु की कहानियों की कथावस्तुयें कहीं न कहीं ग्रवश्य उसी ग्राँचल से जुड़ती हैं जिसका विशद ग्रौर विस्तृत रूप 'मैला ग्रांचल' में है। इसलिए रेणु की कहानियों के कथात्मक ग्राधार का विश्लेषण करने के लिए भी 'मैला ग्रांचल' का विश्लेषण ग्रावश्यक है।

'मैला ग्रांचल' ग्रौर ग्रंचल :

'मैला ग्रांचल' के ग्रन्तिम ग्रावरण पृष्ठ पर सुमित्रानन्दन पन्त की कविता से यह पंक्तियाँ उद्धृत हैं :—

भारत माता ग्राम वासिनी
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा ग्रांचल—

इससे इस बात का संकेत मिलता है कि कवि ग्राम जीवन पर एक उपन्यास लिखकर ग्रौर बाद में 'पन्त' की इन पंक्तियों में समान समानान्तर ग्राशय पाकर इस उपन्यास का नाम 'मैला ग्रांचल' रख बैठे। लेकिन उपन्यास में जगह-जगह पर सचेत होकर धरती के धूल भरे मैले ग्रांचल का वर्णन एक ग्रौर सुझाव भी देता है। यह नाम विषयानुरूप पाकर ही बाद में रेणु ने उपन्यास लिखा। 'पन्त' की ये पंक्तियाँ तो ग्रवश्य ही उसे प्रभावित कर उठी, उसी तरह जैसे 'दिनकर' की प्रसिद्ध 'कविता की पुकार' में कविता कवि से कह

उठी थी कि 'चलो कवि वन फूलों की ओर' और हिन्दी कवियों की एक पूरी पीढ़ी वायवी छायावादी दुनिया से निकल कर वन फूलों की ओर' चल पड़ी थी। 'मैला आंचल' का एक चरित्र डा० प्रशान्त सोचता है :—

"विद्यापति की चर्चा होते ही कविवर दिनकर का एक प्रश्न बरबस सामने आकर खड़ा हो जाता था—'विद्यापति कवि के गान कहाँ' बहुत दिनों के बाद मन ने उलझे हुए उस प्रश्न का जवाब दिया—"जिन्दगी भर बेगारी करने वाले अपढ़ गंवार और अर्ध-नग्नों ने कवि, तुम्हारे विद्यापति के गान हमारी टूटी झोपड़ियों में जिन्दगी के मधु रस बरसा रहे हैं...ओ कवि तुम्हारी कविता ने मचल कर एक दिन कहा था—चलो कवि! वन फूलों की ओर! वन फूलों की ओर! वनफूलों की कलियां तुम्हारी राह देखती हैं।"[1]

मैले आँचल का मोह :

'मैला आंचल' में डा० प्रशान्त पढ़ा-लिखा प्रशिक्षित और प्रबुद्ध डाक्टर है। 'विदेशी स्कालरशिप' ठुकराता है और पूर्णिया और सहरसा के ज़िलों में विशेषकर पूर्वी अंचल में रहकर मलेरिया और काला बाज़ार के बारे में खोज करके मानव-वेदना को कम करना चाहता है, इसलिए वन फूलों की ओर खिंच जाता है। वह लोक-कल्याण करना चाहता है, मनुष्य के जीवन को क्षय करने वाले रोगों के मूल का पता लगाकर नयी दवा का आविष्कार करेगा। रोग के कीड़े नष्ट हो जाएंगे। इन्सान स्वस्थ हो जायेगा।[2] वह जानता है कि स्वयं उपेक्षित और स्नेह वंचित है लेकिन मां के लिए उसके मन में प्रेम उभरता है। किसी भी अभागिन की कहानी सुनते ही मन ही मन वह उसकी भक्ति करने लगता है और फिर वसुन्धरा मां, धरती माता! जिसका आंचल मैला है, इसी धरती मां का एक सुनहरा अंचल भी है—"गेहूं की सुनहली वालियों से भरे हुए खेतों में पुरवैया हवा लहरें पैदा करती हैं। सारे गाँवों के लोग खेतों में हैं मानो सोने की नदी में कमर भर सुनहले पानी में सारे गाँवों के लोग क्रीड़ा कर रहे हैं। सुनहरी लहरें।"[3] फिर धरती के इस सुनहरे अंचल में मैल कब लगती। वास्तव में डा० प्रशान्त और फणीश्वर नाथ रेणु दोनों माँ वसुन्धरा के इस सुनहरे अंचल को मैला हुआ देखते हैं और धूल भरा देखते हैं और उनसे रहा

१. मैला आंचल, १९५७, पृष्ठ १०६।
२. वही, पृष्ठ १८६।
३. वही, पृष्ठ १८४।

नहीं जाता। डा० प्रशान्त उपन्यास के अन्त में ममता से कहता है—"...मैं साधना करूँगा ग्रामवासिनी भारत माता के मैले आंचल तले। कम से कम एक ही गांव के कुछ प्राणियों के मुरझाये होठों पर मुस्कराहट लौटा सकूँ, उनके हृदय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ...।"[1] फणीश्वरनाथ रेणु से भी इसीलिए रहा नहीं जाता और वह बिहार के उत्तर में काशी के किनारे बसे पूर्णियां ज़िले में अपने आपको बिखेर देता है। रेणु की हर कहानी कहीं न कहीं इसी प्रान्तर को छूती है। डा० प्रशान्त जानता है कि "गांवों के लोग बड़े सीधे दीखते हैं। सीधे का अर्थ यदि अनपढ़, अज्ञानी और अन्धविश्वासी हो तो वास्तव में सीधे हैं वे।"[2] लेकिन ये सीधे किसान भयातुर हैं, बीमार और निराश हैं उनकी झोंपड़ियों में रोगों ने घर कर रखे हैं, गरीबी गन्दगी और जहालत से भरी हुई दुनिया है इनकी। इनके यहाँ सुन्दरता जन्मती है लेकिन शाम होने से पहले ही सुन्दरता के वे कमल कुम्हला जाते हैं "पपड़ियां झड़ जाती हैं।" लेकिन यहाँ की धरती में फिर भी कुछ ऐसा है कि कुढ़ते मरते रहकर भी इनका साथ जीवन आसानी से नहीं छोड़ता, "खेतों में फैली हुई काली मिट्टी की संजीवनी इन्हें जिलाये रखती है। शस्थ श्यामला सुजला सुफला...।"[3] इनकी धरती है और इसीलिए डा० प्रशान्त इस धरती में आकर उसी संजीवनी की खोज करता है—"वह नये संसार के लिए इन्सान को स्वस्थ और सुन्दर बनाना चाहता है यहां इन्सान है कहां...अभी पहला काम है जानवर को इन्सान बनाना।"[4]

यह है मैला आंचल की भूमि, वन्ध्या लेकिन उपजाऊ भी, मैली लेकिन सुनहरी भी, इसी भूमि के श्यामल अंचल को रेणु का गल्प साहित्य जीवित कर देता है। "परती परिकथा में भी यही धरती है और रेणु के परवर्ती साहित्य को भी कहीं न कहीं भौगोलिक क्षेत्र संस्कृति भाषा, बोली, इतिहास, किसी न किसी बिन्दु पर यही आंचल छूता है।

'तीसरी कसम' का कथांचल :

'तीसरी कसम अर्थात् मारे गये गुलफ़ाम' रेणु की प्रतिनिधि कहानी है

---

१. मैला आँचल, पृष्ठ ४२५।

२. वही, पृष्ठ ६३।

३. वही, पृष्ठ २३३।

४. वही, पृष्ठ २३४।

ग्रौर इसका कथांचल भी उत्तरी बिहार ग्रर्थात् मिथिला ग्रोर नेपाल की सीमा पर फैला पूर्णियां ज़िला है। कहानी के नायक हीरामन ने जो तीन कसमें खाईं वे उसके रोज़गार ग्रौर उस क्षेत्र के लिए विशिष्ट है जिसमें वह रोज़गार करता है। चोर-बाज़ारी का माल, चार खेप सीमेंट ग्रौर कपड़े की गांठें उसने पूर्णियां ज़िले के जोगवनी गाँवों से नेपाल के विराट नगर पहुंचाई। गाड़ी खोई ग्रौर बाल बाल जान बची। दूसरी बार बांस की लदनी लदी तो मोड़ पर घोड़ा-गाड़ी से टक्कर हो गई। तब 'फारबिसगंज' से 'मोरंग' का भाड़ा ढोया था उसने। ग्रौर फिर तीसरी बार 'फारबिसगंज' मेले में नौटंकी में नाचने वाली ग्रौरत हीराबाई उसकी गाड़ी में सवार हुई तो एक ग्रनजाना सम्बन्ध उसके साथ जुड़ गया। तीनों बार तीन कसमें खाईं कि भाड़ा चाहे कितना भी मिले ऐसी लदनी नही लादूंगा।

'तीसरी कसम' में 'फारबिसगंज' 'छत्तापुर पचीरा', 'तेगच्छिया', 'कंजरी नदी', 'मदनपुर', 'बिसनपुरगंज', 'नननपुर', 'परमान नदी' जैसे कितने ही नाम मिलते हैं। यह पूर्णियां ज़िले में वास्तविक या कल्पित गांव है ग्रौर इन्हीं की सीमाग्रों से घिरा ग्रंचल इस कहानी में उभरा है। ये नाम केवल नाम नहीं। हर नाम एक पूरी सांस्कृतिक भाषागत इकाई है ग्रौर कहानीकार उन सब इकाइयों को एक बड़े से चित्र में बाँध देता है। यह चित्र है गाड़ीवान हीरामन ग्रौर नर्तकी हीराबाई के सरल स्निग्ध ग्रौर सहज सम्बन्धों का। फारबिसगंज में मेला लगता है ग्रौर हीरामन कई बार फारबिसगंज ग्राया है लेकिन हीराबाई के कारण - 'फारबिसगंज तो हीरामन का घर-दुग्रार है' राह चलते हुए हीरामन ने किसी दूसरे गाड़ीवान को गलत बता दिया कि वह 'छत्तापुर पचीरा' जा रहा है ग्रौर दूसरी बार दूसरे गाड़ीवानों से कह दिया कि 'कुडमा गांव' जा रहा है। हीराबाई हैरान होकर कह उठी कि 'पत्तापुर छपीरा' कहां है जिस पर हंसते हंसते पेट में बल पड़ गये, हीरामन के' 'तेगच्छिया' के पास पहुंच कर पर्दे वाली गाड़ी को देखकर बच्चे तालियां बजा कर गा उठे—

'लाली लाली डोलियां में···
लाली रे दुलहिनियाँ।'

हीरामन भी स्वप्नों में दुल्हन को लेकर लौटा है। कई बार ग्रौर इस बार 'तेग-च्छियां' गांव की ही नहीं किसी भी दूसरे गांव की याद उसकी नस नस में समा रही है। 'कजरी नदी' के साथ-साथ उसकी सड़क जा रही है ग्रौर 'परमान नदी' का तो महुवा घटवारिन की लोक कहानी से सम्बन्ध है ही। हीराबाई के कथा सुनने के

शौक को पूरा करने के लिए हीरामन को लीक छोड़ कर ननपुर के रास्ते जाना पड़ा ।

इस तरह इस कहानी में बिखरे हुए गांवों के नाम केवल नाम नहीं हैं । हर गाँव विशिष्ट है । इस कहानी के ग्रांचल में हर गाँव अपनी लोक संस्कृति के रंग में उभर कर आया है । कहीं लोकगीत उभरता है तो कहीं किसी पुराने पेड़, चट्टान या मकान से सम्बन्धित एक लोक कहानी है । गाँव का अंचल खुद वहीं के एक निवासी द्वारा लोक-संस्कृति के इन्हीं रंगों में उभारा जा सकता था ।

सर्वहारा का गीतकार :

नये कहानीकार कमलेश्वर ने 'रेणु' को सर्वहारा के जीवन का कथागायक बताया । सर्वहारा वर्ग भारत का प्रतिनिधि वर्ग है । अब इसलिए 'रेणु' भारत के प्रतिनिधि जीवन का चितेरा है । यह ठीक है कि इन्होंने केवल पूर्णियां ज़िले को प्रतिनिधि मानकर उसका जीवन जिया है और इसीलिए उसी आंचल के जीवन को ठीक से चित्रित कर सके । प्रेमचन्द ने केवल बनारस के आस-पास के किसान जीवन को ही मुखर कर दिया था लेकिन हम उन्हें अपने समय के समूचे किसान जीवन का कथाकार मानते हैं । अपने ही परिवेश को अच्छी तरह समझना और उसे रूपायित करना पर्याप्त और आवश्यक होता है । 'रेणु' ने अपने अंचल को जिया और उसे समझा । 'तीसरी कसम' तो उनकी प्रतिनिधि कहानी है जो मैला आंचल में रेखांकित आंचल की ही धरती से सम्बन्ध रखती है । 'रेणु' की दूसरी ऐसी कहानियाँ जो शहरी आंचल से दूर की धरती से सम्बन्ध रखती हैं इसी तरह पूर्णियां ज़िले के आंचल को छूती हैं । 'लालपान की बेगम', 'अच्छे आदमी', 'रसप्रिया', 'पंचलाइट', 'सिरपंचमी का सगुन', 'एक आदिम रात्रि की महक', 'तीर्थोदक' आदि कहानियाँ कहीं न कहीं पूर्णियां ज़िले के आंचल को ही छूती हैं । 'तीसरी कसम' में उल्लिखित आंचल का भूगोल स्पष्ट उभर आया है । हीरामन की गाड़ी का सफर कई गाँवों से होकर फारबिसगंज पर खत्म होता है । हर गाँव अपनी विशिष्टता उस गाँव को देता है लेकिन किसी भी अच्छी आंचलिक कहानी में अंचल केवल भूगोल का पर्याय हुआ नहीं करता । जगहों की नामावली अंचल की रूपरेखा जरूर तैयार करती है लेकिन अंचल, लोगों के स्वभावों में विद्यमान होता है । लोगों की प्रवृत्तियाँ उनकी मानसिक प्रतिक्रियाओं और उनके मुहावरे में अंचल की विशिष्टता होती है । 'तीसरी कसम' में हीरामन-हीराबाई, पलटदास, लालमोहर, धुनीराम, लहसनवां, नेपाली दरबान

बक्सा ढोने वाला आदमी आदि कई ऐसे पात्र हैं जो अपने एक या दो वार्तालाप से ही फारबिसगंज के आंचल को मुखर बना देते हैं और उसे पुनर्जीवित करते हैं। इसी तरह 'लालपान की बेगम' में बिरजू की मां, मखनीफुआ या जंगी की पुतोहू, अपनी स्वभावगत विशिष्टता से अंचल को विशिष्ट बना देती है। एक औरत लालपान की बेगम सी लगती है दूसरी रेलवे स्टेशन के पास की लड़की 'टीशन की छोकरी' है।' इस तरह एक अंचल में बंध कर सब उसी रंग में रंगती है। इस कहानी का आंचल, अपने रंग, सुगन्ध और ध्वनि के ऐन्द्रिय प्रभावों से स्पष्ट उभर आता है। 'गाड़ी की लीक घन खेतों के बीच होकर गई है, चारों ओर गौने की साड़ी की खसखसाहट जैसी आवाज होती है, बिरजू की मां के माथे पर मूंग टीके पर चांदनी छिटकती है।" "गौने की रंगीन साड़ी से कडुवे तेल और लड़वा सिन्दूर की गंध आ रही है।" जब बिरजू का बप्पा गाड़ी लेने गया था तो बिरजू की मां तंग आ गई थी। एक तो पति ऐसा मर्द कि कभी नाच नहीं दिखायेगा, दूसरे बच्चे-चम्पिया और बिरजू तंग कर रहे हैं। चम्पिया बरतन से टपकते हुए छावा गुड़ को उंगलियों से चाटती है और बिरजू तलहथी फैलाकर एक रत्ती भर शकरकंद मांग रहा है। एक पूरा वातावरण बांध देता है लेखक। और फिर लोकविश्वास की झलक भर देकर आंचल को और उभारता है। बिरजू की मां भगवान् से पूछती है कि मनसूबा क्यों तोड़ दिया।

उसको सबसे पहले भगवान से पूछता है यह किस चूक का फल दे रहे हो भोला बाबा। अपने जानते उसने किसी देवता की मानमनौती बाकी नहीं रखी। सर्वे के समय जमीन के लिए जितनी मनौतियां की थी—महावीर जी का रोट तो बाकी ही है "हाय रे देव। भूल चूक माफ करो महावीर बाबा। मनौती दुगनी करके चढ़ायेगी बिरजू की मां।"

विश्वास का केन्द्र : आंचल का घेरा

और यही विश्वास हर गाँव के हर व्यक्ति में मिलता है। विश्वास तो हर कोई रखता है लेकिन जिस ढंग से रेणू के चरित्र अपना विश्वास प्रकट करते हैं, वह उन्हें सहज बना देता है। 'अच्छे आदमी' में उजागिर का विश्वास था कि उसका चाय बनाने का इल्म' उसे रूप वाली दुलहिन लाने में अवश्य सहायक होगा। वह सारी उम्र सिर्फ रूप पीकर रह सकता था। यदि लड़की गाँव की हो क्योंकि—"बालू वाली ज़मीन का कूप और गाँवों की लड़की का

रूप दोनों बराबर हैं ।" रहिकूपर गाँवों में उजागिर अपनी लक्ष्मी सी घरनी और बेटे प्रदीप कुमार को लेकर चाय की दुकान कर रहा है तो प्रदीप कुमार की मांय के कारण उस सड़क पर चलने वाला लालगाड़ी का ड्राइवर, सन्तोषी-सिंह, ठेकेदार जी, नये दारोगा साहिब, लाला का बेटा सब के सब राहिकपुर की उस चाय की दुकान के पास खिचे चले आते हैं और एक पूरा आँचल उभरता है । इस आँचल में नामों की कोई विशिष्टता नहीं अपितु विशिष्टता है उजागिर के इस सहज विश्वास की कि उसकी पत्नी लक्ष्मी है जिसके कारण उसका मकान बना, उसकी दुकान बड़ी हो गई और उसका सम्मान गाँव भर में बढ़ा । 'रेणु' के आँचल किसी या किन्हीं पात्रों के सरल-विश्वासों के कारण स्थानिक हो उठते हैं । अच्छे आदमी की यह स्थिति कहीं और भी हो सकती है लेकिन उजागिर और उसका सरल विश्वास हर कहीं नहीं हो सकता, वह हर एक को अच्छा आदमी मानता है लेकिन अन्त में अपने उसी सरल विश्वास की रक्षा के लिए पत्नी को खूब मारता-पीटता है । यह इसी सरल विश्वास के कारण हो सका कि सब कुछ होने के बाद ही "प्रदीप की माय उजागिर की छाती से मुंह सटाकर बिलखने लगी, उसे लगा कि विवाह के बाद आज पहली बार वह अपने घर वाले के साथ, अपने पुरुष के साथ सुहागरात मना रही है ।"

टोले का आँचल : गाँव का अंचल

उत्तरी बिहार में ही नहीं हमारे देश के हर गाँव में लोग टोलों में रहते हैं । 'मैला आँचल' में ब्राह्मण टोली, तंत्रिमा टोली, यादव टोली, कुरमी टोली, राजपूत टोली, बबुआन टोली जैसी कई टोलियों का जिकर आता है । हर टोली की जातिगत और पारंपरिक विशेषता होती है, लेकिन एक टोली दूसरी टोली पर समय-समय पर नाराज़ होती है, फिकरे कसती है और लड़ती झगड़ती भी है । 'रेणु' की कहानियों में 'पंचलाइट' एक ऐसी कहानी है जिसका आँचल इसी टोलीगत ईर्ष्या पर आधारित है ।

'यह बात नहीं कि गाँव भर में कोई पंचलेट बोलने वाले नहीं । हरेक पंचायत में पंचलेट है, उसके जलाने वाले जानकार हैं लेकिन सवाल है कि पहली बार नेम-टेम करके, शुभ-लाभ करके, दूसरी पंचायत के आदमी की मदद से पंचलेट जलेगा । इससे तो अच्छा है कि पंचलेट पड़ा रहे ज़िन्दगी भर ताना कौन सहे । बात बात में दूसरे टोले के लोग कूट करेंगे—तुम लोगों का पंचलेट

पहली बार दूसरे के हाथ से···! न, न ! पंचायत की इज्जत का सवाल है। दूसरे टोले के लोगों से मत कहिए।"

इस कहानी का अंचल टोलों की इसी हल्की-फुल्की नोंक-झोंक में उभरता है। यह ठीक है कि इस कहानी में पैट्रोमेक्स का आना एक ऐतिहासिक घटना है लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसी घटनाएँ बहुत साधारण होते हुए भी रेणु की कहानियों में असाधारण हो गई हैं। रेणु का निर्वाह कहानी को जीवन्त बना देता है। टोलों की नोंक-झोंक के बीच में से उभरते हुए आँचल का सबसे अच्छा उदाहरण 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' होते हुए भी रेणु की सारी गाँव सम्बन्धी आँचलिक कहानियाँ निर्वाह की दृष्टि से अधिक सम्पन्न और सम्पूर्ण हैं।

निर्वाह की आंचलिकता :

यह एक उचित प्रश्न है कि आंचलिकता क्या एक शैली ही है अथवा विषय में से उभरती हुई वस्तु की ही कोई विशेषता है। इस समस्या को अगले अध्याय में सुलझाया जायेगा लेकिन यहाँ 'रेणु' की कहानी 'नित्य लीला' का आंचल केवल निर्वाह में से ही उभरता हुआ दिखाई देता है। इस कहानी का अंचल प्रसिद्ध पुराण 'श्रीमद्‌भागवत' का अंचल है। कहानी भी वहीं पारम्परिक है कृष्ण की बाल लीला की और मथुरा चले जाने की। लेकिन 'रेणु' की लेखनी इस कथा में असाधारणता के प्राण फूंकती है। नन्द महर की दाढ़ में दर्द उभरा है और लेटे है और जसुमति के साथ अंगनाई में बैठे किसी गम्भीर बात पर सोच रहे हैं। किसन (कृष्ण) अपने प्रिय बछड़े सलौने से नोंक-झोंक करता रहता है। गाँव की बूढ़ी मनसुखा की मां आती है और किसन से अपने कान के बहरेपन के लिए दवादारू माँगती है। रात को मां का सिर किशन टीपता है और जब नन्द की बेटी योगमाया आती है तो किसन के घर पर अधिकार कर लेती है। वास्तव में वह खुद किसन ही है लेकिन यह अमानवीय और अप्राकृतिक घटना भी 'रेणु' साधारणीकृत कर देते हैं। इस कहानी का आँचल इसी साधारणत्व में बिखरता है। वरना इसमें वही गायें गौशालाएं, गोप बालक, गोपियाँ, राधा, नन्द और यशोदा है जो इतिहास और परम्परा में शतियों से प्रख्यात और सुविज्ञात हुआ है।

विविध शहरी अंचल :

रेणु की कहानियों में आंचलिक विशेषतायें केवल ग्राम कथाओं के रूप में ही नहीं उभर आई हैं। जिस कहानी में उन्होंने शहर का कथानक लिया है

वहाँ भी कथा सिमट कर एक अंचल मात्र रह जाती है। शहर स्वभावतः ही गाँव की अपेक्षा विस्तृत होता है। गाँव भूगोल की दृष्टि से विस्तृत होता है लेकिन लोग इतने बिखरे होते हैं कि हर व्यक्ति की विशिष्टता साथ-साथ उभर आती है। शहर घना होता है। भूगोल की दृष्टि से शहरी आंचल छोटा होते हुए भी गाँवों से कई गुना ज्यादा चारित्रिक और स्वभावगत विशिष्टतायें संजोये रहता है। इसलिए शहरी अंचल में काफी विविधता हो सकती है। 'टेबुल' रेणु की प्रतिनिधि नगर-आंचलिक कहानी है।

काण्टिनेण्टल कास्मेटिक ड्रग्स लिमिटेड, कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, पटना के पटना ब्रांच के दफ्तर का आंचल और इस आंचल में भी एसिस्टेन्ट ब्रांच मैनेजर मिस दुर्बादास के गिर्द घूमता हुआ आंचल। दफ्तर में सिंगेसर चपरासी से लेकर, नगीना प्रसाद, ट्रांसपोर्ट क्लर्क सेन, गुलसन मेहता, बिन्दा महाराज और मिस्टर अनुरन्जन गुप्ता तक सब दुर्बादास के 'चरित्तर' के आस-पास मंडरा रहे हैं। दफ्तरों के वातावरण कई बार कहानियों में आये हैं लेकिन हर दफ्तर एक अंचल नहीं हो पाया है। अंचल को हम जिस परिभाषा के अनुसार आंचलिक कहानी में परखते हैं उसके आधार पर 'टेबुल' का ही दफ्तर न रहकर आंचल हो गया है। रेणु की यह साधारण विशेषता है कि वह अपनी कहानी के आंचल को सर्वथा स्थानिक रंग देने के लिए विश्वास का सहारा लेता है। 'टेबुल' कहानी में भी दुर्बा का एक सामान्य सा विश्वास कहानी का आंचलिक रंग देता है। अपनी ही मेज़ के साथ एक अनिर्वचनीय सम्बन्ध बनाये रखने के लिए दुर्बादास का आग्रह इस कहानी के आंचल की रीढ़ है।

आग्रहों और भूलों की मानव स्थितियाँ :

दुर्बादास का विश्वास कहें, आग्रह कहें या दुराग्रह—टेबुल कहानी को एक आंचल बनाने में सफल सिद्ध हुआ। वहाँ बात कुछ भी नहीं थी लेकिन बात बन गई। शहरी कहानियों के इस आंचलीकरण के सम्बन्ध में रेणु की एक और कहानी 'विकट संकट' उल्लेखनीय है। 'दिगो बाबू' असाधारणतः और अपने परिवार के इतिहास में पहली बार गुस्सा हो जाते हैं जिसके फल-स्वरूप सारे घर को एक शान्तिपूर्ण विरोध करना पड़ता है। घर भर कुछ से कुछ हो जाता है और कथाकार को यह स्थिति चित्रित करने का खूब मौका मिलता है। यद्यपि दिगोबाबू के बड़े बेटे श्रीपार्थ आकर समस्या हल कर देते हैं और दिगो बाबू को अपने साथ ले जाते हैं। लेकिन 'रेणु' कहानी की इस

स्थिति को इसके मूल से सहज जोड़ देते हैं। मूल में तो बात कुछ नहीं थी। ज्योतिषी को देखने के बाद, नौकर रामटहल द्वारा उड़ी-उड़ी बातों में एक बेसिर पैर का अप्रासंगिक वार्तालाप सुना जाता है कि दिगो बाबू के आश्रित लोगों के ग्रह बुरे हैं। कोई उपाय जानना चाहिए। वही इस सारी गड़बड़ की जड़ है। इस अर्ध सत्य सुने गए वार्ताखण्ड की व्याख्यायें हुईं। इससे अर्थों के घटाटोप तक खींचा गया और बखेड़ा खड़ा हो गया। 'रेणु' का संकेत इस तथ्य की ओर है कि केवल गाँव में ही जरा सी बात का बतंगड़ नहीं बन सकता है। एक विषम स्थिति के लिए केवल सभ्यता से अछूते और सीधे अपढ़ गंवारों की ही आवश्यकता नहीं। पढ़ा-लिखा शहरी वर्ग भी इसका शिकार हो सकता है। कारण विश्वास, अर्धविश्वास, व्याख्या, अर्थों की खींचतान आदि साधारण या मानवीय स्थितियाँ हैं। इनकी भूल-भुलैया में कोई भी आदमी कहीं भी पड़ सकता है। शहर और गाँव इसमें कोई भी बाधा पैदा नहीं करते। हाँ! इसमें आंचलिकता केवल रेणु पैदा कर सकते हैं।

आंचलिकता मात्र एप्रोच है

कथावस्तु न ही आंचलिक होती है और न ही अन्यथा। इसके दो कारण हैं जो स्वतः स्पष्ट हैं—१. आंचलिकता केवल एक 'एप्रोच' और शैली मात्र है और कोई भी कथावस्तु आंचलिक बनाई जा सकती है। या कहें कि किसी भी कथानक को आंचलिक रंग में रंगा जा सकता है। २. कथावस्तु किसी विशेष प्रकार की भूमि से सम्बन्ध रखती हो ऐसा आवश्यक नहीं। कथा कुछ भी हो सकती है। विशेषकर रेणु की कहानियों के प्रसंग में तो यह बात और भी स्पष्ट है कि कथानक जरा सा और सामान्य भी हो सकता है। वास्तव में ज्यों-ज्यों कहानी विकास पाती गई यह तथ्य उभरता गया कि कथावस्तु साधारण से साधारण और सर्वथा सामान्य भी हो सकती है। प्रेमचन्द युग में यह मान्यता थी कि किसी विशेष प्रसंग में कथा होती है और किसी में नहीं। खुद प्रेमचन्द तब तक कहानी के निर्माण की कल्पना कर ही नहीं सकते थे। जब तक कि उसमें नाटकीयता न हो। अपने लेख 'मैं कहानी कैसे लिखता हूं' में वे स्पष्ट करते हैं कि किसी घटना को उसकी नाटकीय सम्भावनाओं के कारण ही वे कहानी का रूप पाते थे। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रेमचन्द काल में हिन्दी कहानी घटना को बहुत महत्व देती थी। सभी कहानियाँ घटना-प्रधान नहीं थी लेकिन घटना कहानी में सर्वप्रमुख हुआ करती थी। श्री देवकीनन्दन

खत्री और श्रीनिवास दास में फर्क सिर्फ इतना है कि खत्रीयुग में कहानी घटना ही घटना होती थी लेकिन प्रेमचन्द युग में कहानी घटना के अलावा भी कुछ बनी। उसमें चरित्र, वातावरण, मनोविज्ञान ने भी स्थान बना लिया। लेकिन उत्तर प्रेमचन्द युग में घटना कम होती गई और कभी चरित्र, कभी वातावरण और कभी मनोविज्ञान ही कहानी पर छा गये। यह बात निर्विवाद है कि कहानी का घटना-अंश उसके कथानक की रीढ़ होता है। कथानक घटना के प्रारूप को छोड़कर और कुछ नहीं होता। इसलिए हिन्दी कहानी का कथानक गौण हो गया। नयी कहानी में सर्वथा यह नगण्य सा हो गया। आंचलिक कहानियों में यह यदि नगण्य नहीं हुआ—सर्वथा साधारण तो रह ही गया।

नगण्य घटनाओं का आधार :

कथानक के ह्रास की इस उपर्युक्त प्रक्रिया का एक सीधा-सा कारण है और वह है जीवन का अधिकाधिक और सम्पूर्ण से सम्पूर्ण रूप में कहानी में आ जाना। जीवन के नये से नये यथार्थ का कहानी में आ जाना। जीवन बड़ी-बड़ी या विशेष से विशेष घटनाओं का ही समुच्चय नहीं। जरा सी नगण्य अदृश्य अननुभव्य घटनायें घट सकती हैं। ज्यों-ज्यों हमारा जीवन भौतिक सिद्धि के बावजूद विपन्न होता गया है अर्न्तमुखी चिन्तन और घटनायें बढ़ गई हैं। अन्तर्मुखी चिन्तन तो पहले भी थे यद्यपि अपेक्षया कम तीव्रता के साथ। लेकिन उन्हें साहित्य में इतनी ही ईमानदारी से ढूंढ़ा और अनुभवा जा रहा था। इसलिए सामान्य सी बात जरा सी घटना कहानी में इस नये यथार्थ का आधार बनी।

ऊपर कहा गया कि आंचलिकता केवल शैली है और कोई भी कथानक आंचलिक रंग में रंगा जा सकता है। 'रेणु' ने भी ऐसा ही किया। उनकी लेखनी किसी भी कथावस्तु को उसके आंचलिक परिवेश के साथ प्रस्तुत करती है। वह कथानक को सबसे पहले उसकी भूमि पर स्थापित करती है। भूमि आधार हुआ करती है और कहानी के चरित्र, उसका वातावरण, उसकी प्रकृति सब इस भूमि का जीवन पाते हैं। इसलिए 'रेणु' के कथानक मूलतः भूमि और धरती के कथानक हैं। उनमें धरती की सुगन्ध, धरती के रंग और धरती की धड़कनें सुनाई और दिखाई देती हैं। अन्यथा रेणु के कथानक साधारण हैं। वे साधारण सी समस्याओं, साधारण से चरित्रों के गिर्द घूमते हैं। 'तीसरी कसम' हीरामन के निहायत सामान्य विश्वासों की कहानी है। जी सर्वत्र साधारण

है। 'लालपान की बेगम' का कथानक एक स्त्री की छोटी सी तमन्ना की साधारण सी कहानी है। 'पंचलाइट' एक गाँव में पहली बार पेट्रोमैक्स आने की जरा सी बात को लेकर लिखी गई है। 'टेबुल' दुर्बादास की अपनी मेज के साथ एक ज़रा सी आसक्ति के आग्रह की कहानी है जो व्याख्या से बाहर है। इस तरह हम 'रेणु' की सब कहानियों को लेकर कथानक की साधारणता और साधारण कथानक ही देख सकते हैं। 'रेणु' की कहानियों के कथानक इन भागों में विभक्त हो सकते हैं :—

१. जिनमें किसी चरित्र का अज्ञान प्रदर्शित हो।

२. जिनमें किन्हीं विश्वासों के गिर्द कथानक घूमता है।

३. जिनमें किसी चरित्र का ज्ञान या अज्ञान प्रेरित आग्रह रहता है।

पहले प्रकार की कहानियों में 'पंचलाइट' प्रमुख है। इस कहानी में एक गाँव में पहली बार लाये गये पेट्रोमेक्स के प्रति विभिन्न ग्रामीणों के विभिन्न मतों, कौतूहल, जिज्ञासा और श्रद्धामान के बीच में एक हल्की प्रेम कहानी उभरती है—गोधन और मुहरी की। गोधन का पंचलाइट बालने की विद्या का ज्ञान, उसके अभिशप्त स्नेह सम्बन्ध को वरदान बनाता है। इस प्रकार की कहानियों में अधिकतर ग्रामीण-आंचल ही लिये गये हैं। हमारे भावों का पिछड़ापन और वहाँ के पिछड़े चरित्र अज्ञान को प्रदर्शित करने और एक स्थिति उभरने में लेखक की सहायता करते हैं। इस कारण इस प्रकार की स्थिति हर एक कहानी में उभरती है। जहाँ आंचल ग्रामीण हो। लेकिन शहर के आंचल सम्बन्धी कहानियों में ऐसी अज्ञान की स्थिति उभर सकती है। 'विकट संकट' में नौकर 'रामटहल' ने जो बात उड़ते-उड़ते सुनी उसी के आधार पर बात का बतगंड़ बना और एक बहुत हास्यास्पद स्थिति पैदा हुई। इस प्रकार की कहानियों में स्थिति अवश्य हास्यास्पद हो उठती है।

जरा सी बात की समस्या :

दूसरे प्रकार की कहानियों में 'सिरपंचमी का सगुन' प्रमुख है। यह तो स्पष्ट है कि गाँव या शहर में हर त्योहार-उत्सव के साथ कोई न कोई विश्वास लगा रहता है। सिरपंचमी को अपने हल का फल बनवा के पूजा-आराधना के बाद हल से पहली जोताई करनी थी कि सिघाय का पैर बदला लेने के लिए वहाँ के लोहार ने उसका फाल टेढ़ा कर दिया। यदि रेलवे पटरी वाले लोहार वहाँ न होते तो त्यौहार ही एक अपशकुन में शुरू हो रहा था जो साल-भर

फिर सालता रहता। विश्वास तो मनुष्य के सामाजिक जीवन की जड़ है। विशेषकर त्यौहार या उत्सवों के सामाजिक आयोजनों में तो इनका धार्मिक महत्व बढ़ जाता है। व्यक्ति के जीवन में दैवी विपदाओं से भय आशंका का वातावरण निर्मित करते हैं। इसलिए हर व्यक्ति विशेषकर ग्रामीण व्यक्ति किसी न किसी विश्वास के सहारे टिकता है। यह तो 'रेणु' की हर कहानी में मिलता है। तीसरे प्रकार के कथानक वाली कहानियों में 'टेबुल' प्रमुख है। दुर्बादास का आग्रह है कि दफ्तर में तरक्की पाने के बाद उसकी पुरानी मेज ही उसे मिले। प्रशासन के लिए उस जरा सी बात से भी एक समस्या पैदा होती है। लेकिन दुर्बादास ने जो हठ किया वह पूरा करके ही दम लेती है। वरना वह नौकरी से इस्तीफा देने को तैयार है। हैड क्लर्क बेचारा लम्बी छुट्टी लेकर चला जाता है क्योंकि यह दुर्वा के इस सचेत आग्रह के द्वारा पैदा हुई स्थिति से दो चार होकर घबरा जाता है। 'रसप्रिया' में मिरदंगिया का आग्रह था कि मोहना को किसी भी मूल्य पर मिरदंग सिखाये। यह उसे और लड़कों की तरह 'दस-दुआरी' या भिखारी कह कर ही—क्यों न चिढ़ाये। 'लालपान की बेगम' में बिरजू की माँ का आग्रह था कि बैलगाड़ी पर 'बैसकोप' देखने जाये। इन सब कहानियों में एक हल्का-फुल्का छोटा-मोटा आग्रह ही पृष्ठभूमि में रहता है।

शिल्प की दृष्टि से रेणु के कथानकों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उन्होंने कथानकों को कहानी के सांचे में ढालते समय उनकी हर विस्तृत और निकट या दूर की सम्भावना का उपयोग किया है। कहानी के आरम्भ, मध्य और अन्त के पुराने मानदण्ड के आधार पर हम इनके कथानक का विकास नहीं देख सकते हमें देखना भी नहीं चाहिए। इनके कथानक एक प्रभाव डालते हैं। हमारे मन पर उनका आरम्भ, मध्य या अन्त स्वयं में और अलग-अलग से कोई महत्व नहीं रखता।

———

[illegible]

[illegible]

परिच्छेद चार

"मानुषेर मन जेन सरषेर पुटली...."

प्रतिनिधि चरित्रों की रूपरेखायें,
हीरामन; उजागिर, हाराधन,
पंचकौड़ी मिरदंगिया; सिघाय,
किसन; मिस दुर्बादास; बिरजू की मां,
गीतालीदास; हीराबाई,
चरित्र प्रधानता; समकालीन टाइप चरित्र,
प्रतिटाइप-व्यक्ति; विचार और व्यक्ति,
आग्रह का अभाव,
परिभाषायें; पारिभाषिक सीमाओं से बाहर,
केवल मानव; संवेदना के वाहक,
अच्छे आदमी,
आदिम रस गंधों के माध्यम।

परिच्छेद चार

"मानुषेर मन जेन सरषेर पुटली...."

यह कहना या समझना नितांत एकांगी और गलत है कि आंचलिक कथाकार सदा ग्रामीण कथा या चरित्रों के प्रति पक्षपाती होता है। उसका मस्तिष्क ग्राम के पूर्वाग्रह से भरा रहता है। जैसे कि पहले स्पष्ट किया गया है—अंचल अपनी विशिष्टता के कारण बनता है—कथा कोई भी हो सकती है—कथा का क्षेत्र कोई भी हो सकता है। स्वयं रेणु के कथा साहित्य को देखते हुए हम इस भ्रान्ति को स्पष्ट कर सकते हैं। वास्तव में आंचलिकता अधिकतर शैली या कहे 'निर्वाह' मात्र होती है। कथा में उसी से विशिष्टता आती है और चरित्र भी उसी से कुछ अलग से कुछ असाभान्य हो उठते हैं वरना जीवन के विशाल-क्षेत्र के किसी भी पक्ष से उनका सम्बन्ध हो सकता है।

'रेणु' के चरित्रों के एक सामान्य पर्यवेक्षण से हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि उनके चरित्र जीवन की विविधता को पूर्णतया उपस्थित करते हैं। पेशे और जीवनगत परिवेश की दृष्टि से उनके चरित्रों का विश्लेषण निम्नलिखित ढंग से हो सकता है। (यहाँ उनकी मुख्य कहानियों के दस मुख्य चरित्र स्वयं 'रेणु' के शब्दों को उद्धृत करके चित्रित किये गये हैं। आंचलिक कथाओं के चरित्रों का चित्रण उन्हीं की शैली में इसी तरह हो सकता है।)

रूप रेखायें :

१. हीरामन : यह गाड़ीवान पूर्णियां जिले का 'चालीस साल का हट्टा-कट्टा काला कलूटा देहाती नौजवान अपनी गाड़ी और अपने बैलों के सिवाय दुनिया की किसी और बात में विशेष दिलचस्पी नहीं लेता...हीरामन भाई से बढ़कर भाभी की इज्जत करता है। भाभी से डरता भी है, हीरामन की भी शादी हुई थी बचपन में ही। गौने के पहले ही दुलहिन मर गई। हीरामन को अपनी दुलहिन का चेहरा याद नहीं।...दूसरी शादी ? दूसरी शादी न करने के अनेक कारण हैं। भाभी की जिद्द, कुमारी लड़की से ही हीरामन की शादी करवाएगी। कुमारी का मतलब हुआ पांच सात साल की लड़की। कौन मानता है सरधा कानून ? कोई लड़की वाला दो ब्याहू को अपनी लड़की गरज पड़ने पर ही

दे सकता है। भाभी उसकी तीन सत्त करके बैठी है सो बैठी ही है। भाभी के आगे भैया की भी नहीं चलती।...अब हीरामन ने तय कर लिया है, शादी नहीं करेगा। कौन बलाय मोल लेने जाये। ब्याह करके फिर गाड़ीवानी क्या करेगा कोई। और सब कुछ छूट जाये गाड़ीवानी नहीं छोड़ सकता हीरामन।" अजीब अनुभव हुआ उसे इस बार। दो बार पहले चोरी का माल और बांसों की लदनी लादकर जो जान फंसी थी सो बाल बाल बचा। अब टप्पर में लाद रहा है हीराबाई को और 'परदा डालने पर भी पीठ में गुदगुदी लगती है।' वह हैरान है कि यह फूल सी महक रही औरत उसकी गँवई बातों, गांव-गीत, लोक-कथाओं आदि में इतनी रुचि लेती है या खुद उसी में, वह जानता नहीं। वह उसे 'मीता', 'भैयन', 'गुरुजी' कहती है। इतनी सुन्दर औरत कोई डाकिन पिशाचिन हो सकती है लेकिन हीरामन का कलेजा धड़क उठा।... नहीं नहीं पाँव सीधे हैं टेढ़े नहीं। लेकिन तलुआ इतना लाल क्यों है? उसे ढोते हुए उसके पूर्व दृष्ट सपने याद आते हैं "वह अपनी दुलहिन को लेकर लौट रहा है। हर गांव के बच्चे तालियां बजाकर गा रहे हैं। हर आंगन में झांक कर देख रही हैं औरतें।" और इसीलिए न जानते हुए भी लक्ष्य पर पहुँच कर "...डबडबाई आंखों से हर रोशनी सूरजमुखी फूल की तरह दिखाई पड़ती है।" लेकिन उसकी इस नयी अनुभूति की गहनता का आरम्भ यहाँ से होता है और दिनों दिन यह अजाने ही हीराबाई के नज़दीक खिचा चला जाता है। नौटंकी देखना उसके लिए समस्या बन जाता है—"नहीं जी। एक रात नौटंकी देखकर जिन्दगी भर बोली ठोलीं कौन सुने?...देसी मुर्गी विलायती चाल।" लेकिन जब हीराबाई ने उसे साथियों समेत पास दिलाया तो "...हां पहले गुरु कसम खानी होगी सभी को कि गाँव भर में यह बात एक पंछी भी न जान पाये।" उन दिनों वह दिन-भर भाड़ा ढोकर शाम को नौटंकी देखता। "नगाड़े की आवाज सुनते ही हीराबाई की पुकार कानों के पास मंडराने लगती—भैया...मीता...हीरामन...उस्ताद...गुरुजी। हमेशा कोई न कोई बाजा उसके मन में बजता रहता। यहां तक कि जाती बार हीराबाई से पैसा लेते हुए वह अचकचाया और गाड़ी के जाने पर "प्लेटफार्म खाली...सब खाली...खोखले ...मालगाड़ी के डिब्बे...! दुनिया ही खाली हो गई मानो!"

२. उजागिर: चाय की दुकान करता है उसका घर दक्षिण कटिहार से अररिया कोट और जोगबनी फारबिसगंज से चलने वाली गाड़ियों का 'गैर-सरकारी बस पड़ाव।" और उसकी एक रूपवाली दुलहिन। सीता की बोली,

सीता की हँसी, सीता का चलना-फिरना। दिन-रात मानो उजागिर स्वप्नों की दुनिया में ही रहता था। रूप पीकर जीता था और उसकी चाय की दुकान—"उजागिर ने अपने डिपाट पर निगाह डाली। उजागिर का विभाग—चाय डिपाट—कप—तस्तरी, गिलास, छन्ना, चम्मच, चाय, दूध, सब" उसकी दुलहिन और दुकान दोनों से आकृष्ट होते गए एक-एक करके ठेकेदारजी, किसनपुर के बाबू लाल गाड़ी के ड्राइवर जी, जोगबनी के लाला जी का बेटा, और मकान बनाने वाला छूछन्दर मुंहा राजमिस्तरी सबको उजागिर अच्छा आदमी समझने और कहने लगा, क्योंकि उसकी पत्नी के साथ सम्बन्ध रखते हुए भी वे सब उन्हें अच्छे लगते हैं और फिर 'गाँव के आवारा नौजवानों ने उजागिर को चिढ़ाने के लिए एक बोली निकाली, "ठेकेदार साहब सचमुच अच्छे आदमी हैं।" लेकिन एक दिन उजागिर का मोह टूट ही गया और "लात मार-मार कर दोनों चूल्हों को तोड़ फोड़ आया।" और फिर "प्रदीपकुमार की माय उजागिर की छाती से मुंह सटाकर बिलखने लगी। उसे लगा, विवाह के बाद आज पहली बार वह अपने घरवाले के साथ अपने पुरुष के साथ सुहागरात मना रही है।"

३. मिस्त्री हाराधन यंत्रकार - "तीन बिंदिया" कहानी की गीताली दास यन्त्रकार जी के मन्त्रबल से ही गीत-पायल हुई है।···जानती है, खुकी, सफल शिकारी होने के लिए आदमी को सभी क़िस्म के शिकारियों से परीक्षा लेनी है। शेर भालू के शिकारियों से लेकर व्याघ-लुब्धक और सपेरों की भी संगति करनी पड़ती है। यंत्रकार कहो मिस्त्री कहो या कारीगर तुम मेरी नातिन की उम्र की हो। नाना की बात सुनोगी···यंत्र के सहारे ही सहायक नादों की पाँच हजार आन्दोलन युक्त ध्वनियों की बारीकियों का उपभोग कर सकोगी। सदा ध्वनित होने वाले जाने अनजाने सुर में तुम्हारे जीवन का प्रत्येक क्षण मुखरित हो उठेगा।" ···और दूसरी जगह "यंत्रकार कहो या कारीगर। बेसुरा नहीं कह सकता कोई।···यह तो अपने किये का फल भोग रहा हूँ खुकी। बेजान लकड़ी, तार तथा सूखे चमड़े पर सुर चढ़ाकर जीवन बिताने के सिवा और क्या चारा है अब? शापित जीवन बिता रहा हूँ।"

४. पंचकौड़ी मिरदंगिया—"हां यह जीना भी कोई जीना है? निर्लज्जता है, और ठेठरई की सीमा होती है।···पन्द्रह साल से वह गले में मृदंग लटका के गांव-गांव घूमता है, भीख मांगता है।···दाहिने हाथ की टेढ़ी उंगली

मृदंग पर बैठती ही नहीं, मृदंग क्या बजायेगा।···अब तो धा तिंग 'धा तिंग' भी बड़ी मुश्किल से बजाता है। ···अतिरिक्त गांजा भांग के सेवन से गले की आवाज विकृत हो गई किन्तु मृदंग बजाते समय विद्यापति की पदावली गाने की चेष्टा वह अवश्य करेगा। ···फूटी माथी से जैसी आवाज निकलती है वैसी ही आवाज सों-सोंय।" पहले की वात और थी अब की वात और है। "पंचकौड़ी मिरदंगिया की मण्डली ने सहरसा और पूर्णियां जिले में काफी यश कमाया है। पंचकौड़ी मिरदंगिया को कौन नहीं जानता। सभी जानते हैं वह अधपगला है। ···गांव के बड़े बूढ़े कहते हैं—"अरे पंचकौड़ी मिरदंगिया का भी जमाना था" लेकिन इस मण्डलिया का आत्मसम्मान यह कि "किसने कहा तुमसे मैं भीख माँगता हूँ? मिरदंग बजाकर पदावली गाकर, लोगों को रिझाकर पेट पालता हूँ।"

५. सिंघाय—गाँव की परिपाटी के अनुसार कालू कुमार से लिया हुआ कर्जा वापिस नहीं किया तो ऐन सिर पंचमी के दिन उसके हल का फाल टेढ़ा किया कालू कमार ने। "बाकी खैन वसूलने का यही एक जातीय तरीका है। सिर पंचमी के दिन फाल टेढ़ा कर दो। सारी दुनिया रिरियाता फिरेगा। फाल सीधा कराने के लिए।" लेकिन जब सिंघाय की पत्नी ने रेलवई-मिस्त्रियों से फाल सीधा करवा लिया तो बतकही होने लगी "सिंघाय बेखबर है। कड़े पानी का फाल है उसका। खूब गहरे जोतता है। खेती में कड़ा होने से क्या, घर गृहस्थी में मिट्टी का लौंदा हुआ जा रहा है, यह सिंघाय और मिस्त्री से मिलने के बाद सिंघाय के कानों में देर तक गूंजते रहे उसके वाक्य बाण—"भैंस तुम्हार दुधार है, माने? तुमसे ज्यादा होशियार है तुम्हारी घरवाली, माने? —बूढ़ा साला बड़ा रसिया है। ओ···ओ शहर भगाने का मन्तर भी दे चुका है। ओ—ओ।" और तभी बदला लिया उसने मिस्त्री से, कालू कमार से मेल करके। श्रम उसने किया फायदा कालू का हुआ लेकिन उसका दिल तो ठण्डा हुआ।

६. किसन—भागवत या महाभारत का किसन नहीं—बस किसन, नंद महर (जिनके दाढ़ में दर्द उभरा करता है) और जसुमति (जिनके सिर में दर्द हुआ ही करता है) का बेटा। गर्ग पण्डित की 'खुसर पुसर" और "इरिंग विरिंग" से तंग आया हुआ क्योंकि गर्ग कह रहा था—"कितना ही लाड़-प्यार जोग-जतन करो लेकिन किसन किसू का नहीं होगा, किसी का नहीं।" फिर घर

के दमघोट वातावरण से परेशान हो जाता है किसन "···और सब कुछ सह सकता है किसन किन्तु घर भर के लोगों के लटके हुए मुंहों के बीच उसका दम घुटने लगता है। उस दिन गौ-बछड़े भी लम्बी-लम्बी सांसें लेकर रात काटते हैं।···व्रज नारियों के उलाहनों से विरक्त होकर जिस दिन मां मुंह लटकाती है उस दिन कम से कम ऐसी उदासी तो नहीं छाती।" क्योंकि किसन गोप बालाओं के उलाहनों और आरोपों का उत्तर डट कर देता है। उसका नन्हा साथी बछड़ा "सलौना" उसकी गवाही देता है—"सुन रही हो मां! साफ-साफ कह रहा है, सब झूठ। बोलो मां, पशु बेचारा किसी के लिए झूठ क्यों बोलेगा?···आं···।" और इस सामान्य से किसन को जब योगमाया का चोला पहनकर नित्य लीला रचते हुए देखा जाता है तो "जसुमति ने देखा, जो किसन वहीं योगमाया, वहीं राधा, वही अनुराधा, वही सलोना, वही···वह भी···स्वयं जसुमति भी किसन।" और किसन बेचारा अनचाहे ही जैसे इस जादुई चमत्कार में खो गया हो निर्दोष—"किसन किसी की ओर आंखें उठाकर देखता भी नहीं; चोर की तरह खड़ा है।"

७. मिस दुर्बादास—"असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर, काण्टीनेण्टल कास्मेटिक एण्ड ड्रग्स लि०, कलकत्ता-बम्बई-दिल्ली-पटना। ब्रांच पटना।" दफ्तर में गुलसन मेहता ने हिन्दी को सुरक्षित रखने के नाते दुर्बादास को धन्यवाद दिया और उसके हिन्दी में लिखे नेमप्लेट की तारीफ की लेकिन "दुर्वा नहीं मेरा नाम दुर्बा है" और यही असामान्य या सामान्य को काट देने का आग्रह है दुर्बा का। आठ साल से जिस टेबुल पर काम करती आई है उसके सिवा और किसी टेबुल के पास बैठने की इच्छा नहीं होती और यही विचार दुर्बा में एक ग्रंथि का रूप धारण कर गया। अपनी टेबुल में कांटी ठोकना, डी० डी० टी० छिड़कवाना, जोर से उसके ड्रायर खोलना, बन्द करना, दूर्बा के मन में कहीं गहरे कोंचता है और उसका सहपाठी (अब अधीन) अनुरंजन गुप्ता इस ग्रंथि को समझता नहीं और बेचारा मारा जाता है। सेन का कहना साधारण व्यवहार की दृष्टि में ठीक लगता है। "साला, काठ की चीज का वास्ते इतना दर्द और मानुस का वास्ते कुछ नहीं—भीतर में?" ···"जुल्में है कि! एतना रूप मुफ्ते चला गया।" यह टेबुल तारक्की पाकर "ए बी एम" बनकर भी रखे रहना। आत्म केन्द्रिता दुर्बा के जीवन का प्रश्न बन गया और अनुरंजन गुप्ता से निजी तौर पर अनुनय किया 'उस टेबुल पर किसी का बैठना मुझे सहन नहीं होगा। उसके बिना···जानते हो? इस बीच हर रात मैंने स्वप्न में टेबुल को

देखा। देखा, वह टेबुल मुझे मिल गया है फिर छीन लिया गया है। बहुत बड़ा युद्ध हो गया—मार-काट। दंगे।···टेबुल में आग लगा दी गई है मेरा टेबुल जल रहा है, धू-धू कर···कितने सपने ऐसे ही भयावने। गुप्ता त्यागपत्र देकर चला गया लेकिन "त्याग पत्र दे या चूल्हे में जाये। मूर्ख अनुरंजन गुप्ता··· मेरा धरम बच गया···मेरी इज्जत बच गई···तुम मेरे ही रहे···मेरी ही। कांटा दूर हुआ ! आह···!!"

"टेबुल के टाप ग्लास पर अपने गालों को बारी बारी रखती, स्पर्श सुख से सिहरती—सिसकती दुर्वा खिलखिलाई · जाको जापर सत्य सनेहू···हं हं हं ···सी ई ई ई !"

८. बिरजू की माँ - (लाल पान की बेगम) "इस मुहल्ले में लाल पान की बेगम बसती। नहीं जानती दोपहर दिन और चौपहर रात बिजली की बत्ती भवक भवक कर जलती है।" यह तो खैर मुहल्ले वाली जंगी की पुतोहु मखनी फुआ से कह रही थी जलन के मारे। सरवे सित्तलमिंटी (सर्वे सेटलमेंट) के हाकिम के बासा पर फूलछाप किनारी वाली साड़ी पहनके गई थी बिरजू की माँ और ज़मीन अपने नाम करा आई थी। खुद वह परेशान है इस समय। "बिरजू की मां का भाग्य ही खराब है ; जो ऐसा गोबर गणेश घर वाला उसे मिला। कौन-सा सौख-मांज दिया है उसके मर्द ने ?" लेकिन पड़ोसिनें जलती हैं उसके अपने असाधारण तेज से लेकिन जब उसकी बैलगाड़ी चल पड़ी और उसने उन्हीं सब "जलन डाही" पड़ोसिनों को गाड़ी पर बैसकोप देखने चलने को कहा तो उसकी सब इच्छाएं पूरी हुईं। "बिरजू को गोद में लेकर बैठी उसकी मां की इच्छा हुई कि वह भी साथ साथ गीत गाये। बिरजू की मां ने जंगी की पुतोहू की ओर देखा धीरे-धीरे गुनगुना रही है वह भी। कितनी प्यारी पुतोहू है। गौने की साड़ी से एक खास किस्म की गंध निकलती है। ठीक ही तो कहा हैं उसने। बिरजू की मां बेगम है, लाल पान की बेगम। यह तो कोई बुरी बात नहीं। हाँ, वह सचमुच लाल पान की बेगम है।"

९. गीतालीदास—"अपने को सुरजीवी कहती है नांद - सुर—ताल आदि के सहारे ही वह इस मंजिल तक पहुँची है। सभी कहते हैं उसकी साधना सफल हुई है। गीताली आजकल अक्सर अपने मन में उत्पन्न होने वाले सहायक नाद का विश्लेषण करती है। ···सहायक नाद जिसको ओवरटोन कहते हैं। "डाट डाट डाट ··। गीताली इन नन्हीं-नन्हीं तीन बिन्दियों को आँखों के सामने

शून्य में उभरने वाली छोटी-छोटी तारिकाओं को अब अच्छी निगाह से देखती है, पहचानती है इस शुभ चिह्न को।" इन्हीं नादों को समझ-सहेज कर गीताली ने अपनी वड़ी बहन, एक समय की प्रसिद्ध ठुमरी गायिका मीताली की अस्तंगत ख्याति का प्रतीकार करने के लिए और सरल सुगम सहज संगीत को 'स्वतन्त्र मर्यादा दिलाने के लिए मीताली दी की परित्यक्ता रागिनियों को उदारतापूर्वक आश्रय दिया।" ···मीताली को उसके साहित्यिक विद्वान पति ने आकाश से धरती पर ला पटक दिया और गीताली को भी ऐसी स्थितियों का सामना करना पड़ा। लेकिन वह बचा बचा के चली और फिर अखिल भारतीय सुर-संगम समारोह में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया।

१०. हीराबाई—जब से हीरामन की गाड़ी में बैठी फारबिसगंज के मेले में "मथुरा मोहन नौटंकी कम्पनी में लैला बनने वाली हीराबाई का नाम किसने नहीं सुना होगा?" "हीरामन गाड़ीवान की पीठ में गुदगुदी लगती है।"—'औरत है या चम्पा का फूल। जब से गाड़ी में बैठी है गाड़ी मह-मह महक रही है" बच्चों की बोली जैसी महीन, फेनु गिलासी बोली' है हीराबाई की। हीराबाई हीरामन को 'मीता' कहती है लेकिन "कहाँ हीराबाई कहाँ हीरामन, बहुत फर्क है।" क्योंकि हीरामन के अनुसार मर्द और औरत के नाम में फर्क होता है। वह बैलों को मारता है तो सहानुभूति के स्वर में उससे कहती है—अहा! मारो मत! कम्पनी की औरत होते हुए भी तेगछिया पहुंच कर "हीराबाई घाट की ओर चली गई। गाँव की बहू बेटियों की तरह सिर नीचा करके धीरे-धीरे। कौन कहेगा कि कम्पनी की औरत है। ···औरत नहीं लड़की शायद कुंआरी ही है।" और नौटंकी में हीराबाई ने जब हीरामन और उसके साथियों के लिए पास बनवा दिया जिससे वे रोज खेल देख सकें, सभी ने हीराबाई को अपनी दृष्टि से देखा और अपनी-अपनी धारणा बनाई। लाल मोहर समझता है कि हीराबाई उसे अधिक 'पावरवाला' समझ कर उसी की ओर देख रही है। पलटदास ने तो पहली ही झलक में हीराबाई को सिया सुकमारी माना था और श्रद्धावश पैर टीपने की अनुमति माँगने पर भगाया गया था। खेल होते हुए वह उसी अपरिवर्तित श्रद्धा के साथ गुलबदन गुलफाम सुलतान पर सियासुकमारी, राम, रावण का रूपक आरोपित करता है और 'रमैन' की लीला श्रद्धा से रची जाती देखता है। लेकिन हीरामन के मन में जो गुदगुदी पहली बार पैदा कर गई हीराबाई वह बनी ही रही—"गाड़ी में बैठकर भी हीरामन

की ओर देख रही है टुकुर टुकुर।" ...."हीराबाई हाथ की बैंगनी साफी से चेहरा पोंछती है। साफी हिलाकर इशारा करती है—अब जाओ।"

चरित्र प्रधानता

ऊपर हमने 'रेणु' की कहानियों से दस प्रतिनिधि चरित्र लिए और उनके रेखाचित्र (शब्दचित्र) दे दिये। यह वास्तव में चरित्र-चित्रण नहीं क्योंकि हमने इन चरित्रों के चित्र खुद 'रेणु' के ही शब्दों को लेकर खींचे। अपना उनमें कुछ नहीं जोड़ा। इन शब्द-चित्रों के प्रस्तुत करने का एक विशेष उद्देश्य है कि हम इनकी ही तरह कई चरित्रों को सम्पूर्ण कहानी पर छाया हुआ पाते हैं। सारी कहानी एक तरफ से किसी या किन्हीं चरित्रों को छोड़कर कुछ नहीं रह जाती। अतः उपर्युक्त शब्द-चित्र देते समय एक बड़ी कठिनाई आती है कि कहानी में से क्या लिया जाय और क्या नहीं। चरित्र कहानी की हर घटना हर स्थिति में मौजूद है—पूरी कहानी पर छाया हुआ है। इससे हम एक निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। प्राचीन या शास्त्रीय शब्दावली में कहा जाय तो रेणु की सभी कहानियाँ चरित्र प्रधान हैं। हर कहानी एक तरह से केवल एक चरित्र रह जाती है। यह ठीक है कि एक ही चरित्र कहानी को तथा कथित चरित्र-प्रधान नहीं बना सकता लेकिन यह भी ठीक है कि एक चरित्र सारी कहानी के सारे अवयवों पर इतना छा सकता है कि शेष कहानी भी उसी चरित्र को पोषित करती—समृद्ध करती हुई लगे। निस्सन्देह कहानी के कई तत्व होते हैं और चरित्र उनमें एक है लेकिन जिसे 'चरित्र-प्रधान' कहानी कहा गया है उसमें कथावस्तु, भाषा-शैली, कथोप-कथन आदि तत्व अनुपस्थित न होते हुए भी प्रमुख नहीं रहते। वे गौण हो जाते हैं और केवल चरित्र-चित्रण प्रमुख हो उठता है। 'रेणु' की कहानियों में भी चरित्र-चित्रण प्रमुख हो उठा है लेकिन यह प्रमुखता अपना सर्वस्व शेष तत्वों से ग्रहण करती है। चरित्र अपना पोषण और पुष्टि शेष तत्वों से प्राप्त करते हैं इसलिए सारी कहानी "एक सम्पूर्ण" हो जाती है। सारी कहानी का प्रभाव एक हो जाता है और इस प्रभावैक्य को प्रस्तुत करने का श्रेय चरित्र को है।

इस तरह "तीसरी कसम" हीरामन (और हीराबाई भी कह सकते हैं) की 'लाल पान की बेगम' बिरजू की माँ की, और 'टेबुल' दुर्बादास की कहानी हो जाती है।

समकालीन टाइप चरित्र

हिन्दी गल्प के चरित्रों का इतिहास देखने से हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि अधिकांश चरित्र 'टाइप' है यानी कि आदर्श। उन जैसे सैकड़ों चरित्र हमें आये दिनों अपने इर्द-गिर्द मिलते हैं। ऐसे चरित्र अपने किस्म के अकेले नहीं होते बल्कि अपने पूरे वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं। इन चरित्रों के साथ हम जल्दी और आसानी के साथ सहमत हो जाते हैं। क्योंकि ऐसे चरित्रों की सी विशेषताओं के समानान्तर ढूंढने में हमें मुश्किल नहीं पड़ती। यदि प्रेमचन्द से ही शुरू करें तो हम देखते हैं कि प्रेमचन्द का सबसे महत्वपूर्ण और उच्चतम चरित्र 'होरी' 'टाइप' है—हमारे समकालीन संस्कार बद्ध और संक्राति ग्रस्त किसान का प्रतिनिधि है। दूसरे शब्दों में 'गोदान' की जैसी स्थिति में कोई भी किसान होरी सा ही 'चरित' दिखा सकता था। इसी तरह प्रेमचन्द के दूसरे महत्वपूर्ण चरित्र प्रेमशंकर, अमरकान्त, निर्मला आदि टाइप' है, प्रेमचन्द ने चरित्रों के चित्रण की असंख्य संभावनाओं के द्वार खोले लेकिन खुद उनकी लेखनी इतनी सशक्त थी कि उनकी खोदी लीक आसानी से उपेक्षित न हो सकी। यही वजह है कि प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में भी अधिकांश के चरित्र 'टाइप' हैं। यशपाल के चरित्र भी टाइप है और समाज की किन्हीं प्रतिनिधि स्थितियों और भावनाओं या विचारधाराओं के प्रतिनिधि हैं। वे निश्चित उद्देश्यों से प्रेरित हैं और निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रति चलते हैं। जैनेन्द्र तो घोषित रूप में मानव मन की विभिन्न ग्रंथियों को उघाड़ना चाहते हैं। मनुष्यों के आपसी सम्बन्धों को वे परखते हैं और उनका विशेष उद्देश्य उनके यौन सम्बन्धों की प्रेरणाओं को मन में ढूंढना होता है। इसके लिए वे जिन चरित्रों की सृष्टि करते हैं वे भी 'टाइप' ही होते हैं। 'अज्ञेय' जहाँ कविता में 'व्यक्ति' की बात करते हैं और चेतना रूप में चाहते हैं कि समूह की सभ्यता का मुखौटा व्यक्ति के चेहरे से उतर जाय, वहाँ अपने उपन्यासों में वे भी केवल 'टाइप' चरित्रों की ही सृष्टि करते हैं। 'नदी के द्वीप' उपन्यास उन्होंने केवल इसी सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए लिखा जान पड़ता है लेकिन उस उपन्यास के तीनों चरित्र (रेखा, भुवन और चन्द्र माधव) 'टाइप' हो गये हैं। हमें स्पष्ट लगता है कि रेखा या भुवन जैसे चरित्र हमारे इर्द-गिर्द हैं, भले ही संख्या में वे उतने नहीं हों जितने प्रेमचंद के चरित्र। वास्तव में प्रेमचंद से शुरू करके और अज्ञेय तक आते जाते जिस कथा और चरित्र शृंखला से हमें गुजरना पड़ता है वह किसी न किसी रूप में किसी मन्तव्य, किसी सिद्धान्त, किसी

विचारधारा या किसी सैद्धान्तिकता से प्रेरित है। सिद्धान्त और उसका प्रमाणीकरण—यह इस प्रक्रिया का मूल मन्त्र है। सिद्धान्त बड़ा भारी भरकम या छोटा-सा भी हो सकता है। वास्तव में बीसवीं शती नये-नये वैज्ञानिक, सामाजिक, दार्शनिक और साहित्यिक मतवादों का स्रोत रही और इनका प्रभाव कविता और गद्य दोनों में हो रही रचना पर पड़ा। प्रेमचंद किसान के दर्द से घायल थे और गाँधी जी की राजनीतिक आँधी में अपने चरित्रों को बहा गये। यशपाल मार्क्सवाद के मुखर समर्थन में अपने चरित्रों की व्यक्तिगत विशेषताएँ सुरक्षित न रख सके। जैनेन्द्र यौन ग्रन्थियों को सुलझाने में इतने लगे रहे कि उनका हर महत्वपूर्ण चरित्र फ्राइड से निर्देशित और परिचालित रहा। अज्ञेय भी व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध पर इतना सोचते रहे कि एक संहिता बना डाली। जिसके नियमों और उपनियमों पर उनका हर चरित्र वफ़ादारी से चलता रहा। मतवाद और सिद्धान्त चरित्र पर इतना हावी रहा कि चरित्र भी सिद्धान्त हो गया।

प्रति-टाइप-व्यक्ति

लेकिन यह क्रम पहली बार 'रेणु' में टूटता है और 'रेणु' का हर चरित्र 'व्यक्ति' और अकेला चित्रित होता है। वह अपने वर्ग का प्रतिनिधि नहीं होता। हीरामन गाड़ीवान है लेकिन उसके चरित्र में जो कुछ है वह उसके गाड़ीवान होने के कारण नहीं। ऐसा होता तो धुनीराम, पलट दास, लालमोहर, प्रभृति गाड़ीवान भी उसी जैसे होते। वह हीराबाई को देखता है उसके सम्पर्क में आता है तो वे सब उसी की तरह उसके सम्पर्क में आते हैं। लहसनवां हीराबाई वाले थियेटर में नौकरी करता है और उसका मतलब केवल इस बात से है कि हीराबाई की साड़ी धोने के बाद कठौते का पानी 'अतर गुलाब' हो जाता है। और "पलटदास हर रात नौटंकी शुरू होने के समय श्रद्धापूर्वक स्टेज को नमस्कार करता है।" लेकिन हीरामन इन सबसे अलग है। कहानी के अन्त में "उसने उलट कर देखा, बोरे भी नहीं, बाँस भी नहीं, बाघ भी नहीं··· परी···देवी··· मीता···हीरा देवी···महुवा घटवारिन···को···ई नहीं। मरे हुए मुहूर्तों की गूंगी आवाजें मुखर होना चाहती हैं।" हीरामन जो कुछ है वह उस विशेष स्थिति के कारण नहीं जिसमें वह कहानी में चित्रित हुआ है। वह क़िसी भी स्थिति में वैसा ही हीरामन रहता। क्योंकि हीरामन केवल हीरामन

ही हो सकता है, प्रेमचन्द या यशपाल या शरच्चन्द्र या किसी और का कोई दूसरा ग्राम्य चरित्र नहीं।

चरित्र हमारे मन पर छाप छोड़ जाते हैं तो केवल अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के ही कारण नहीं। 'टाइप' चरित्र भी हमें बहुत प्रभावित कर सकता है लेकिन 'व्यक्ति' का समानान्तर न मिलने पर बहुत विशिष्ट हो उठता है और इस तरह अमर हो जाता है। रेणु के चरित्र जैसे हीरामन, हीराबाई, दुर्बा, बिरजू की मां, उजागिर, पंचकौड़ी मिरदंगिया, गीताली दास, हाराधन—यन्त्रकार आदि हिन्दी कथा साहित्य के अमर चरित्र हैं।

विचार और व्यक्ति :

ऊपर कहा गया है कि 'रेणु' पूर्व कथा-साहित्य का 'रेणु' या समवर्ती कथा-साहित्य भी अधिकतर 'टाइप' चरित्रों से इसलिए भरा है कि उसमें सिद्धान्त मुखर हो उठा है, वास्तव में ऐसे चरित्र किन्हीं विचारों की उत्पत्ति होते हैं। कथाकार पहले विचार निश्चित कर लेता है। उसकी तर्क सम्मत और कारण कार्य सम्बन्धी प्रणाली अवधारित करता है और फिर चरित्र का विकास उसी प्रणाली के अनुसार करता है। इस हालत में विचार प्रधान और अनुभूति गौण हो जाती है। समवर्ती कथाकारों में भी ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं। उदाहरणतः राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' संग्रह की कहानियाँ और विशेषकर 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' नामक कहानी में विचार बहुत प्रमुख और स्पष्ट है। मोहन राकेश की 'जानवर और जानवर' कहानी को भी इसी सन्दर्भ में लिया जा सकता है। कमलेश्वर की कहानी 'ऊपर उठता हुआ मकान' भी एक विचार विशेष पर निर्मित है।

आग्रह का अभाव :

विचार स्वयं में बुरा नहीं और फिर आज की दुनिया में विचार ही सबसे प्रमुख हो गया है, लेकिन विचार कहीं-कहीं पर इतना सशक्त हो उठता है कि आग्रह बन जाता है। ऐसा आग्रह बुरा होता है लेकिन फणीश्वर नाथ रेणु के चरित्र किसी भी विचार से प्रेरित या अनुप्राणित नहीं होते। वास्तव में होता तो यह है कि रेणु के अधिकांश चरित्र किसी के पूर्वाग्रह से या किसी विचार की तीव्रता से छले ही जाते हैं, गलत दिशाओं में भटकाये ही जाते हैं। जहाँ भी विचार का आग्रह आता है, रेणु के चरित्र मोमबत्ती की भाँति घुल जाते

हैं। उनके 'मैला आंचल' का बावनदास इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। उनके कथा चरित्रों का ही विश्लेषण करें तो पता चलता है कि विचार उनके चरित्रों की रीढ़ नहीं। पंचकौड़ी मिरदंगिया अपने श्रोताओं और ग्राहकों के दुराग्रह से मारा जाता है और उसकी आखिरी तमन्ना कि मोहना छौंड़ा को 'रसपिरिया' का पाठ पढ़ा सके, 'विदापत' की पदावली की परम्परा चलाये रख सके-- अधूरी रह जाती है। बिरजू की माँ गाँव के लेन-देन के व्यवहार के हाथों अपनी जरा सी भी इच्छा को भी कत्ल हुआ देखती यदि उसके पति में जरा 'पौरुख' न होता। हाराघन यन्त्रकार तो बेचारा गीताली को अखिल भारतीय सम्मान दिलाकर भी स्वयं श्रेय न ले सका। इस तरह सब चरित्र स्वतः विकसते हैं और कहीं भी आग्रह या विचार की तीव्रता सहन नहीं कर सकते।

परिभाषायें :

चरित्र-चित्रण के बारे में साहित्य शास्त्र में बीसियों मान निश्चित हैं। चरित्र किस प्रकार के होते हैं? इस प्रश्न का सबसे प्राचीन उत्तर यहीं मिलता है कि चरित्र (नायक) मूलतः धीर होता है और फिर उदात्त, उद्धत, ललित या प्रशांत हो सकता है। नायक के स्वभाव की कोई पाँचवी श्रेणी भी हो सकती है। यह हमारे आचार्य मानने को तैयार नहीं थे। वास्तव में उस समय का साहित्य ऐसे ही चार प्रकार के चरित्रों से भरा पड़ा है। पश्चिम में भी चरित्रों की युगानुकूल व्याख्यायें हुईं और वर्गीकरण हुए। यदि हम पश्चिम के एक अपेक्षाकृत आधुनिक आलोचक[१] को लें तो उनके अनुसार चरित्र दो वर्गों में विभाजित हो सकते हैं: "हम चरित्रों को गोल और समतल (फ्लैट एण्ड राउण्ड) वर्गों में बाँट सकते हैं।" उनके अनुसार समतल चरित्र वे ही होते हैं जिन्हें हमने इसी परिच्छेद में 'टाइप' बताया। ऐसे चरित्र एक विचार पर केन्द्रित होते हैं और गोल चरित्रों में विकास के अन्त तक आते-आते एक गोलाई, वक्रता या कहें परिवर्तन आता है। "समतल चरित्रों का एक फायदा यह है कि जब भी वे सामने हों और हम उन्हें आसानी से पहचान सकते हैं। पाठक अपनी भावुक आँख से उन्हें पहचानता है—सामान्य-दर्शक—आँख से नहीं, जो केवल व्यक्ति वाचक नाम जान पहचान लेती है।"[२] हम ऐसे

---

१. ई० एम० फार्स्टर आस्पेक्टस आव दि नावल : पृष्ठ ७५ (पेलिकन)।

२. वही, पृष्ठ ७६।

चरित्रों के समान व्यक्ति जल्दी ही और आमतौर पर अपने इर्द-गिर्द पाते हैं—क्योंकि ये आदर्श होते हैं और बहुत कम बोलते हैं। गोल या परिवर्तनशील चरित्र आसानी से नहीं मिलते। आदर्श और 'टाइप' से हटकर 'गोल' चरित्रों की सृष्टि करना अधिक कठिन लेकिन वांछित हुआ करता है। फास्टर्र महोदय के अनुसार 'टाइप' या समतल चरित्र केवल उबाने वाले होते हैं।[1]

पारिभाषिक सीमाओं से बाहर :

जहाँ तक 'रेणु' के चरित्रों का सम्बन्ध है—वे समतल नहीं होते हैं। वे अपरिवर्तनशील नहीं होते और न ही वे टाइप होते हैं। ऊपर दिखाया गया है कि उनके सब चरित्र अकेले हैं, अनुपम हैं यानी कि असमानान्तर हैं। वे केवल 'राउण्ड' या गोल या परिवर्तनशील भी नहीं। परिभाषा के अनुसार केवल अन्त तक आते-आते बदलना भी उनका स्वभाव नहीं। वे या तो बदलते ही बदलते हैं या फिर अन्त तक बदलते ही नहीं। दूसरे शब्दों में फार्स्टर का वर्गीकरण रेणु पूर्व-कथा चरित्रों पर लागू हो सकता है लेकिन रेणु पर नहीं। खुद फार्स्टर ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या अंग्रेज़ी के उन्नीसवीं शती के उपन्यासकारों के उदाहरण देकर की है। हम 'रेणु' का कोई भी चरित्र लेकर उसका विकास देख सकते हैं। 'बिरजू की माँ'[2] आरम्भ से बड़ी गुस्सैल और चिड़चिड़ी लगती है और अन्त में बैलगाड़ी पर बैठे-बैठे प्रसन्न चित्त नज़र आती है तो कह सकते हैं कि वह 'राउण्ड' है। लेकिन यह सत्य भी स्वयं में अधूरा है। यदि वह कहानी के आरम्भ में चिड़चिड़ी है तो केवल एक आकांक्षा में पूर्ति होने में देरी होने के कारण। चिड़चिड़ापन उसका स्थायी स्वभाव नहीं। ऐसा होता तो वह रूठी पड़ी रहकर महावीर जी को रोट चढ़ाने की मनौती न करती। मन ही मन आशाओं के पुल न बाँधती। 'दिगो-बाबू'[3] में भी एक अचानक परिवर्तन हुआ लगता है। वे वर्षों बाद अपने नौकर राम-टहल को खुले में पीटते पाये जाते हैं, तो कोई नहीं कह सकता कि वे 'गोल'

1. For we must admit that flat people are not in themselves as big achievement as round ones and also that they are best when they are comic.

२. लाल पान की बेगम।

३, विकट संकट।

चरित्र हो गये क्योंकि वह उनके चरित्र का कोई परिवर्तन नहीं होता। वे फिर घर-भर के असहयोग के दौरान चुपचाप अपने कमरे में पड़े रहते हैं – पूर्ववत— उनकी पत्नी धर्मशीला के शब्दों में—'कर्मयोगी'।

केवल मानव :

ये उदाहरण देकर यह साबित करना अभिप्रेत नहीं कि 'रेणु' के चरित्र बदलते नहीं अतः वे फ्लैट या समतल है वास्तव में वे 'राउण्ड' नहीं तो फ्लैट भी नहीं, 'टाइप' भी नहीं। यह ऊपर बताया जा चुका है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि फार्स्टर महोदय का चरित्रों का वर्गीकरण 'रेणु' के जैसे आंचलिक कथाकार पर लागू हो ही नहीं सकता। इसका कारण यह है कि 'रेणु' अपने चरित्र सीधे गाँव की गीली मिट्टी से ले लेते हैं। वे उन्हें उनके मूल और स्वाभाविक रूप में पहचानते हैं और उन्हें अपनी स्वभावगत प्रकृति के समेत प्रस्तुत करते हैं। खुद कथाकार उन चरित्रों को किसी वर्गीकरण की दृष्टि से नहीं रचते। उनके चरित्र मूलतः मनुष्य हैं— मानव—अकृत्रिम मानव। और मानव प्रकृति बहुत उलझी हुई होती है कि उसे हम किसी एक परिभाषा में बाँध नहीं सकते।[१]

संवेदना के वाहक

रेणु के चरित्रों को किसी शास्त्रीय वर्गीकरण में न बाँधना ही उनके साथ न्याय करना है। इसके दो कारण हैं। पहला यह कि वे परम्परा से हमारे पास आये हुए चरित्रों जैसे नहीं हैं, लेकिन असाधारण भी नहीं हैं। प्रो० धनंजय वर्मा लिखते हैं[२] :—

उसके—'रेणु' के—चरित्रों की मानसिक बनावट में कोई असाधारणता नहीं है लेकिन उनकी व्यंजना में, उसके परिवेश के चित्रण में संगीत के स्वरों

---

1. A human personality is built of nomerous entities as I^1, I^2, I^3, and so on. It is not I because I consists of several is. Therefore 1=1/3, the first is reason, the second is emotion, the third is eternal.—WORLD DRAMA—pp. 719.

—कहानी कला विकास और सिद्धान्त, पृष्ठ १७ (पाद टिप्पणी)।

२. नई पीढ़ी की उपलब्धियाँ—आलोचना—३४।

की सी सूक्ष्मता और सांकेतिकता का योग असाधारण है, उसकी वस्तु और चरित्र नये नहीं हैं, परिवेश नया है। उसमें जीने वाले पात्रों की प्रतिक्रिया का स्वभाव और जीवन को देखने का तरीका कुल मिलाकर उनकी संवेदनायें असाधारण और नयी हैं और सर्वोपरि है 'रेणु' का निर्वाह।

अच्छे आदमी

वास्तव में वर्गों में न आने की यह समस्या केवल रेणु के चरित्रों की, नहीं समस्त आधुनिक साहित्य की है। आजकल के चरित्र 'नायक' नहीं रहे। वे सामान्य से साधारण हो गये। वे हमारे समाज के सबसे अधिक उपेक्षित और साधारण व्यक्ति हैं। वे किसी परिभाषा या वर्गीकरण में नहीं आते। फणीश्वरनाथ 'रेणु' तो और भी साधारण हो जाते हैं। क्योंकि वे अधिकतर ग्रामीण हैं। केवल भूगोल की दृष्टि से ही वे ग्रामीण नहीं हैं। स्वभावतः भी वे ग्रामीण हैं—ग्राम्य है। 'मैला आंचल' के प्रकाशन पर ही तो अधिकांश आलोचकों ने 'रेणु' को प्रेमचन्द के बाद का सर्वोत्तम ग्राम-कथाकार कहा। उनके प्रमुख चरित्रों में पंचकौड़ी मिरदंगिया, विरजू की माँ, उजागिर, सीता, हीरामन, हीराबाई, लल्लू की माँ, सिरजन, किसन, गोधन, मुनरी, सिंघाय या करमा—६० प्रतिशत चरित्र गाँव से सम्बन्ध रखते हैं और इन सब चरित्रों की व्यक्तिगत सत्ता है जिसे 'रेणु' ने सुरक्षित रखा है। लेकिन बात यह भी है कि अधिकांश ग्रामीण चरित्र ग्राम्य भी हैं।

"यह बात नहीं कि गाँव भर में कोई पंचलेट बालने वाला नहीं हरेक पंचायत में पंचलेट है उसके जलाने वाले जानकार हैं। लेकिन सवाल है कि पहली बार नेम-टेम करके शुभ लाभ करके, दूसरी पंचायत के आदमी की मदद से पंचलाइट जलेगा। इससे तो अच्छा है कि पंचलेट पड़ा रहे जिन्दगी भर ताना कौन सुने। बात-बात में दूसरे टोले के लोग कूट करेंगे—तुम लोगों का पंचलेट पहली बार दूसरे के हाथ से···! न, न! पंचायत की इज्जत का सवाल है। दूसरे टोले के लोगों से मत कहिये।"[१]

पेट्रोमेक्स पहली बार गाँव में आ गया तो लोगों ने उसे भी उत्सव के साथ स्वीकृत किया पूरे धार्मिक आयोजन के साथ, लेकिन दूसरे गाँव से वे जलाने की सहायता नहीं ले सकते क्योंकि इसमें उनकी नाक का सवाल है।

---

१. पंचलाइट, ठुमरी, पृष्ठ ८५।

इस तरह नाक का सवाल पेट्रोमेक्स के साथ जोड़ते हैं। 'रेणु' के ग्रामीण ग्राम्य पात्र। फिर उजागिर है तो उन सबको अच्छे आदमी समझता रहता है जो बारी-बारी से उसकी पत्नी, प्रदीपकुमार की माय को वरगलाते हैं और उसका प्रयोग भी करते हैं। 'लाल गाड़ी के ड्राइवर जी भी बहुत भले आदमी हैं।" रोज कहते "देखो उजागिर भाई, चूल्हे के पास बैठते-बैठते प्रदीप कुमार की माय का रंग बादामी हो गया है। देह में गमकौआ पौडर लगाने से रंग ठीक रहेगा और दूसरे ही दिन एक डिब्बा पौडर खरीद आए—पुरनिया साहा कम्पनी से। ऐसा भला आदमी इस गाँव में क्या, इस इलाके में भी खो जाने पर मिलेगा।"[1] और फिर इनके ड्राइवर जी ने एक रात उजागिर की पत्नी को भगा लिया और संतुलन कायम रखने के लिए उसके बच्चे के लिए खिलौने, अपने लिए कपड़े और पति के लिए सीमेंट कोयला और छड़ की परमिट लिवा दिया। दूसरे थे लालाजी के बेटे "गौ जैसा सीधा है जरा दुबला पतला है इसलिए पकौड़े के साथ चाह नहीं, अंग्रेजी दारू पीता है। उस रात को प्रदीपकुमार की माय के देह में दर्द था सांझ से ही···सांझ से ही कुहरती हुई प्रदीपकुमार की माय टनटनाकर उठ बैठी और लला के बेटे से मुंहा मुंही गप्प करने लगी। लक्ष्मी है प्रदीपकुमार की माय।" और इसी तरह उजागिर देखता रहा कि उसकी पत्नी मिस्तरी, दरोगा और जाने किन-किन से सम्बन्ध जोड़ रही है और समझता रहा कि वे सब अच्छे आदमी हैं। इस तरह 'रेणु' के हर चरित्र में ऐसे सीधेपन की छांह मिलती है। 'तीसरी कसम' में हीराबाई के रेलगाड़ी से चले जाने के समय हीरामन बक्सा ढोने वाले नौकर द्वारा प्लेटफार्म से बाहर निकाला गया और—

'हीरामन चुपचाप फाटक से बाहर जाकर खड़ा हो गया। टीशन की बात, रेलवे का राज्य! नहीं तो इस बक्सा ढोने वाले का मुंह सीधा कर देता हीरामन···।"[2]

रेलवे के राज्य में हीरामन की हिम्मत इसलिए नहीं बंधती क्योंकि "हीरामन कभी रेल पर नहीं चढ़ा है" और इसीलिए 'पंचलाइट' कहानी में गाँव वालों ने पहली बार पेट्रोमेक्स का साक्षात्कार किया था।

---

१. अच्छे आदमी, 'रेणु' की श्रेष्ठ कहानियाँ, पृष्ठ ११२।

२, तीसरी कसम, पृष्ठ १५६।

आदिम रसगंधों के माध्यम

'रेणु' के चरित्र वास्तव में सीधे-सादे हैं। सभ्यता की चमक-दमक और शहरी जीवन के छलकपट से दूर। उनमें से अधिकांश आधुनिक क्या पुरानी पड़ी हुई वैज्ञानिक सुविधाओं का नाम भी नहीं जानते। उन्हें हर कोई आकर शोषित करता है। वे अपने अधिकार को भी सिर उठाकर मांगते नहीं। उनके जीवन में मूलभूत मानव प्रवृत्तियाँ अभी अक्षुण्ण रूप में मौजूद हैं। उनकी स्थिति को देखकर हम साधारण मानव मात्र की मूल अनुभूतियों का अनुमान कर सकते हैं। उनको देखकर या तो हम हँसते हैं उनके सीधे पन और अज्ञान पर। हममें संवेदना पैदा होती है क्योंकि उनका अधिकांश जीवन किसी न किसी दुःख पर केन्द्रित है। "रेणु की 'तीसरी कसम' में चरित्र माध्यम है, जो आदिम रसगंधों को उभारता है यदि इसमें भी चरित्र को किसी आदर्शवादी परिणति पर पहुँचा दिया जाता तो कहानी की मौत हो जाती।"[१]

---

१. हिन्दी कहानी और उपलब्धियाँ—डा० बच्चनसिंह, आलोचना-३४, पृष्ठ ६०।

परिच्छेद पाँच

"बाल बोलेगी, मैं नहीं"

आंचलिकता ?

जानपद कहानियां; अंचल और आंचलिकता

शैली; विशेषताएँ :—

शब्द का रखाव,

ओवरहियरिंग; नाद गंध का वातावरण,

सहायक नाद,

मैथिली बनाम खड़ी बोली,

एक अलग भाषा—मैथिली ?

पूर्णियाँ की बोली—मैथिली; 'रेणु' में मैथिली

निर्वाह और एप्रोच,

संवेदना; अज्ञेयी रोमान,

गद्य और पद्य

आंचलिक कहानियों की परम्परा

हास्य में खिले चेहरे ।

परिच्छेद पाँच

"बात बोलेगी, मैं नहीं"

आंचलिकता

फणीश्वरनाथ रेणु की भाषा-शैली के बारे में कुछ भी कहने से पूर्व एक प्रश्न उठता है कि आंचलिकता क्या है ? क्या यह एक शैली मात्र है ? या यह शैली नहीं है कुछ और है—यह कथावस्तु की एक विशेषता है। यदि इन प्रश्नों का उत्तर दिया जा सके तो रेणु की कहानियों की शैली के बारे में कई तथ्य स्पष्ट हो सकते हैं। यह इसलिए है क्योंकि 'रेणु' की अधिकांश कहानियाँ आंचलिक हैं।

जानपद कहानियाँ

'रेणु' को आंचलिक कथाकार कहा जाता है। इसका एक कारण यह जरूर है कि उनके कथानक अधिकतर किसी न किसी अंचल को, जनपद को, यथावत और जीवन्त रूप में पुनर्जीवित करते हैं। संयोग से उनके अधिकांश कथांचल ग्राम सम्बन्धी हैं। इसलिए कहानियों में वे किसी न किसी गाँव के अंचल को ही लेते हैं। इस दृष्टि से उनकी कहानियों में निम्नलिखित मुख्य कहानियाँ ग्रामांचलों को चित्रित करती हैं :—

'रसप्रिया', 'लाल पान की बेगम', 'अच्छे आदमी', 'तीसरी कसम', 'पंच लाइट', 'तीर्थोदक', 'सिरपंचमी का सगुन', 'विकट संकट', 'हाथ का जस-बाक का सत्त' आदि।

अंचल और आंचलिकता

हर कहानी का अपना कथावस्तुगत अंचल है। एक मानदण्ड के अनुसार इन सब कहानियों को आंचलिक मानना चाहिए। ठीक है हम इन कहानियों को आंचलिक कहानियाँ इस अर्थ में जरूर ले सकते हैं कि इनमें से हर एक की भूमि कोई अंचल है लेकिन प्रश्न यह है कि क्या किसी कहानी का अंचल सम्बन्धी होना ही यह साबित करता है कि उसमें आंचलिकता है। 'आंचलिक' और 'आंचलिकता' शब्दों में कुछ अन्तर अवश्य है और ये शब्द केवल विशेषण

ग्रौर भाववाचक संज्ञा होने के कारण ही एक दूसरे से ग्रलग नहीं हैं। 'ग्रांच-लिक' का ग्रर्थ—ग्रंचल सम्बन्धी ग्रौर 'ग्रांचलिकता' का ग्रर्थ एक विशिष्टता से है—एक शैलीगत विशिष्टता। हर जनपद या भौगोलिक इकाई पर लिखी गई कहानी ग्रांचलिक होती है, हो सकती है लेकिन हर भौगोलिक इकाई या जनपद पर लिखी गई कहानी में ग्रांचलिकता नहीं होती। प्रेमचन्द, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा ग्रादि की बहुतेरी कहानियाँ ग्राम के किन्हीं ग्रांचलों से सम्बद्ध हैं ग्रौर एक तरह से ग्रांचलिक कहला सकती हैं लेकिन हर में से किसी कहानी में भी 'ग्राँचलिकता' नहीं मिल सकती। इस तरह 'ग्रांचलिकता' शैली मात्र रह जाती है ग्रौर 'ग्रांचलिक' शब्द का ग्रर्थ उसी ढंग पर किया जा सकता है जिस तरह 'ऐतिहासिक', 'सामाजिक' या 'धार्मिक' शब्दों का। ऐतिहासिक, सामाजिक या धार्मिक कहानियों से हम क्रमशः इतिहास समाज ग्रौर धर्म सम्बन्धी कथायें लेते हैं। **ग्रांचलिकता केवल शैली या कथा का निर्वाह है।** विषय या कथानक कोई भी हो सकता है ग्रौर जिस तरह कई शैलियों से कथावस्तु को विकसित किया जा सकता है उसी तरह ग्रांचलिकता के द्वारा भी उसे निबाहा जा सकता है। केवल कथावस्तु के ग्रांचलिक होने की स्थिति में ग्रांचलिकता की शैली का बहुत उपयुक्त प्रयोग हो सकता है।

शैली :

रेणु की कहानियों के कई उदाहरण हमें स्पष्ट कर सकते हैं कि ग्रांच-लिकता एक शैली मात्र है जो ग्रांचलिक ग्रामीण या जनपदीय कथावस्तु के प्रसंग में बहुत निखर उठती है ग्रन्यथा किसी नगर सम्बन्धी कथानक में भी उस शैली का समान प्रयोग हो सकता है। 'हाथ का जस-बाक का सत्त' कहानी में जग्गू वैद्य बीमारों को देख रहा है। इस दौरान प्रश्न होते हैं, शंकायें प्रकट की जाती हैं, उत्तर दिये जाते हैं ग्रौर सबके ऊपर वैद्य जी हैं कि ग्रपनी चातुरी से ही ज्यादा इलाज करते रहते हैं। प्रेमचन्द इसी स्थिति को एक भिन्न ग्रौर नाटकीय रूप देकर प्रस्तुत करते लेकिन रेणु केवल उड़ते शब्दों, शब्दांशों, ग्रपूर्ण वाक्यों, तुकबद्ध शब्दावली की एक क्रमिक माला पिरोकर पाठक के सामने एक बहुरंगा वातावरण तैयार करते हैं :—

'···बहिन जी। हाँ-दिन-रात माथा मारी ? है न ? हर महीने बीमारी। ऐं ? है न ? ग्राँख के ग्रागे उड़े जुगनू—कान के पास हमेशा घुन-घुन ? है न ?···ग्रशोक के बांकल का काढ़ा, बकरी का दूध गाढ़ा···यह तुतिया किसका

है भाई···लीजिये नीला थोथा···अदरख के साथ काला मोथा, पुराना शहद, काली गाय का गोंत।"

'तीसरी कसम' में हीरामन हीराबाई को महुवा घटवारिन की कथा सुना रहा है :

"पटपटांग क्या ?

हीरामन का मन पल-पल में बदल रहा है मन में सतरंगा छाता धीरे-धीरे खिल रहा है, उसको लगता है।···उसकी गाड़ी पर देवकुल की औरत सवार है। देवता आखिर देवता है।"

इस प्रकार की शैली में आसंगों (एसोसिएशन्स) का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। हीरामन पटपटांग शब्द से और फिर देवता के जिक्र से किसी और ही लोक में जा पहुँचा और उसने हीराबाई को भी देवताओं की पंक्ति में जोड़ दिया।

'रेणु' की शहर सम्बन्धी एक कहानी 'कस्बे की लड़की' से एक उदाहरण लेकर इस बात के स्थापित होने में कोई सन्देह नहीं रह सकता कि आंचलिकता केवल एक शैली है जो जनपद या अंचल सम्बन्धी कथानकों के प्रसंग में तो निखरती ही है, शहर सम्बन्धी कहानी के प्रसंग में भी इसका उतना ही सदुपयोग हो सकता है :—

'सरोज हँसी···पानी बरसे···हं हं। हम रुई नहीं हैं। लल्लन जी, यह क्या कर रहे हो ? लल्लन···पगला···बचपन की आदत··हं हं ठीक इसी तरह गोदी में सिर रखकर···इसी तरह मेरी छाती से सिर रगड़ते थे तुम··· मैंने रामभाई से भी कहा है···हं हं·· हं हं··तुम अभी भी पाँच साल के शिशु हो···लल्लन जी···तुम जानवर हो···जानवर···हं हं···हं हं···कवि···एम० ए०···सुन्दर सुपुरुष···तुम इतने प्यारे·· इतने प्यारे तुम··तुमको हं हं··· मैं जानवर नहीं बनने दंगी···मैं ही जानवर हो गई हूँ···लल्लन जी मुझे माफ करो··इस कुरूपा बहन पर दया करो···। मुझे लजौनी लता की तरह मत रौंदो !···!!'

ये ही स्थितियाँ इन्हीं प्रसंगों में और कहानीकारों द्वारा और शैलियों में प्रस्तुत की जा सकती थीं लेकिन उनमें आंचलिकता न होती। रेणु किसी भी प्रकार के कथानक को आंचलिकता की कूंची से रंग देते हैं।

विशेषतायें :

तो यदि आंचलिकता शैली-मात्र है—इसकी क्या विशेषतायें हैं ? विभिन्न आंचलिक कथाकारों ने विविध तरीकों से आंचलिकता की शैली को एक सुस्थिर और निश्चित रूप दिया है। जहाँ तक 'रेणु' के द्वारा इस शैली के निर्वाह का सम्बन्ध है उसमें निम्नलिखित विशेषतायें मिलती हैं :—

१. शब्द का रखाव

१. शब्द स्वयं अलग से इतने महत्वपूर्ण नहीं जितना उनका रखाव। यह ठीक है कि शब्द का निजी तौर पर अलग से कोई अर्थ नहीं होता। केवल प्रसंग उसे अर्थ या कहें कि ठीक अर्थ दे देता है। इस तथ्य का सबसे उत्तम उदाहरण हमें 'रेणु' की कहानियों में मिलता है। शब्दों के साधारण या सामान्य अर्थ इनकी कहानियों में सर्वथा बदल जाते हैं। इसीलिए 'रेणु' अपने गद्य में कहीं-कहीं पर शब्द अधूरे छोड़ देते हैं। कहीं पर शब्द को इस तरह मोड़ देते हैं कि यह एक नया ही अर्थ ग्रहण करता है कहीं वाक्य पूर नहीं होने देते जिसे ध्वनि या व्यंजना में सहायता ही मिलती है। हीरामन के, बैलों के मारने पर :

'···अहा ! मारो मत !

अनदेखी औरत की आवाज ने हीरामन को अचरज में डाल दिया। बच्चों की जैसी महीन फेनूगिलासी बोली।'

'भैया तुम्हारा नाम क्या है ?

हू-ब-हू फेनूगिलास।···हीरामन के रोम रोम बज उठे।'

"बैलों को खोलने के पहले-बांस की टिकटी लगाकर (वहीं) गाड़ी को टिका दिया। फिर साइकल वाले की ओर बार-बार घूरते हुए पूछा—कहाँ जाना है ? मेला ? कहाँ से आना हो रहा है ? बिसनपुर से ? बस इतने ही दूर में घसघसाकर थक गये ?···जा रे जवानी।" (वही)

"हे देव !···हे देवी···यह क्या ? यह सपना तो नहीं ?···क्या यह सच है ? भारत प्रसिद्ध सितारवादक अकराम का प्रणय निवेदन भरापत्र है यह तो !···शंख घण्टा ध्वनि···धूप गंध। अर्चना के बोल।···ललित में···!··· विलम्बित द्रुत यह कैसे सम्भव हुआ ? दस वर्ष से छिपी हुई बात फैल कैसे गई।···मां !···।" (तीन बिंदिया)

"टेबुल के टाप ग्लास पर अपने गालों को बारी-बारी रखती, स्पर्श सुख से सिहरती—सिसकती दुर्बा खिलखिलाई···जाको जापर सत्य सनेहू···हं-हं-हं···सी ई ई ई !!'

(टेबुल)

२. ओवरहियरिंग

२. 'रेणु' की शैली की दूसरी विशेषता 'ओवर हियरिंग' की कहला सकती है ओवरहियरिंग का अर्थ है बातचीत को उड़ते शब्दों में सुनना। दो जने बतिया रहे हों और हम उन दोनों की बातें यों सुनें कि हमारी उपस्थिति का एहसास उन्हें न हो जिससे अपने वार्ताक्रम में वे हमारे कारण कोई बनावट न लायें। रेणु के पात्र बोलते हैं तो 'रेणु' उनके वार्तालाप का परिचय हमें कोई भूमिका बताकर नहीं देते। वे सीधे दोनों की बातचीत करते हुए हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। वार्तालाप को सहज और स्वाभाविक बनाना तो सब अच्छे कहानीकारों का ध्येय होता है लेकिन 'रेणु' की शैली का यह अंग है और कहानीकार हमें स्थिति के माध्यम के द्वारा चरित्रों से परिचित कराते हैं। 'सिर पंचमी का सगुन' कहानी में सिंघाय गाँव वालों से उकसाया जाकर अपनी पत्नी के 'कृपालु सहायकों', रेलवई के लोहारों से मिलने जा रहा है और 'रेणु' हमें इस बारूद-भरी-स्थिति से यों परिचित कराते हैं :

'राम राम मिस्त्री जी ! मैं माधो का बाप हूँ।···राम-रा···। माधो का बाप ! बूढ़े मिस्त्री ने सिंघाय को गौर से देखते हुए कहा। जवान मिस्त्री ने कहा—दूधवाली का घर वाला ?

···ओ-ओ ! दूध वाली का घर वाला, टेढ़े फाल वाला ? बूढ़े मिस्त्री ने गा-गा कर कहा – बैठो···बैठो क्या नाम है तुम्हारा ?'

ओवर हियरिंग शैली की एक विशेषता यह भी है कि वक्ता स्वयं अपना अलग अस्तित्व नहीं रखता। पात्रों के वार्तालाप के अतिरिक्त जितना कुछ वक्ता कहना चाहता है वह स्वयं भी उन्हीं पात्रों की तरह बोलता है जिससे यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि कोई चरित्र ही बोल रहा है या लेखक स्वयं कुछ कह रहा है।

'···चौप ! रसप्रिया का नाम मत ले।

अजीब है माँ। जब गुस्साएगी तो बाघिन की तरह और जब खुश होती

है तो गाय की तरह हुंकारती आवेगी और छाती से लगा लेगी तुरन्त खुश तुरन्त नाराज।···दूर से मृदंग की आवाज़ आई···धा तिंग धा तिंग।'

(रसप्रिया)

'···न करमा को नींद आएगी।

नये पक्के मकान में उसे कभी नींद नहीं आती। चूना और वार्निश की गंध के मारे उसकी कनपटी के पास हमेशा चौअन्नी भर दर्द चिनचिनाता रहता है। पुरानी लाइन के पुराने 'इस्टेसन' सब हज़ार पुराने हों वहाँ नींद तो आती है।···ले, नाक के अन्दर फिर सुड़सुड़ी जगी सुसरी···।'

(एक आदिम रात्रि की महक)

३. नाद गंध का वातावरण

'रेणु' की शैली का एक उद्देश्य है वातावरण की उत्पत्ति करना। उनकी सारी कहानी एक विशिष्ट वातावरण में हमें ले जाती है। इस वातावरण की विशेषताओं के बारे में डा० शिवप्रसाद सिंह कहते हैं—"आंचलिक वे ही कहानियाँ कही जा सकती हैं जो किसी जनपद के जीवन रहन-सहन, भाषा-मुहावरे, रूढ़ियों अन्धविश्वासों, पर्व उत्सव, लोकजीवन, गीत नृत्य आदि को चित्रित करना ही अपना मुख्य उद्देश्य मानें। आंचलिक तत्व ही उनके साध्य होते हैं।"[1]

'रेणु' के द्वारा चित्रित वातारण में चरित्रों का निजी जीवन हर छोटे से छोटे विवरण के साथ हमारे सामने मुखर हो उठता है। "रेणु की सबसे बड़ी खूबी जो मुझे बहुत पसन्द है यह है कि यथार्थ को वातावरण में लपेटकर इतनी सरलता से सामने लाते हैं कि उसकी गरमी का पता नहीं चलता।"[2] रेणु के द्वारा पैदा किया गया या कहें कि उभारा गया वातावरण इतना जीवंत होता है कि "रेणु का पाठक कहानी पढ़ता नहीं, देखता है···एक-एक ध्वनि, एक-एक गंध, एक-एक रंग को महसूस करता हुआ उसे जीता है, उसके गहरे अर्थों को जानकर चकित होता है···।"[3] इस कथन में राजेन्द्र यादव वातावरण की सफल सृष्टि के लिए ध्वनि रंगों और अर्थों का उल्लेख करते हैं। वास्तव में 'रेणु'

---

१. नयी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति, पृष्ठ १४४।

२. 'लहर' अक्टूबर १९६६, पृष्ठ ७७ (धनंजय वर्मा)।

३. 'रेणु' की श्रेष्ठ कहानियां—प्रमुख स्वर, पृष्ठ ६।

की शैली का मधुरतम और मृदुतम पक्ष यही है कि वे हमें नाद गंध की दुनिया में ले जाते हैं जहाँ प्राकृतिक नादगंध भी है और चरित्रों के कोमल हृदयों का संकेत भी। उपर्युक्त कथन के ही क्रम में राजेन्द्र यादव कहते हैं—"ध्वनि और गंध की छोटी से छोटी लहरी 'रेणु' की कथा में स्वतन्त्र अस्तित्व और व्यक्तित्व रखती है। उसके पात्रों के निर्माण में कुछ अजब तरलता से घुल कर एकाकार हो जाती है…।"[1] संगीत और गंध सबसे अधिक धरती के क्वारे रूप में मिल सकता है और उस धरती के रखवारे किसानों के स्वभाव में घुला हुआ प्राप्त हो सकता है, इसलिए लोकगीत निर्बाध रूप में और स्वतः ही 'रेणु की कहानियों में सुनाई देते हैं।

"रिमझिम वर्षा में बारहमासा, चिलचिलाती धूप में विरहा, चांचर और लगनी—

हाँ • रे, हल जोते हलवाहां मैया रे…
खुरपी रे चलावै…म-ज-दू-र।
एहि पंथ, धनी मोरा है रुसलि…।" (रसप्रिया)

"मोहना के गले में राधा आकर बैठ गई है। क्या बंदिश है।
नदी‥ वह‥ नयनक नी…?
आहे।…पललि बइए नाहि…तो…र।" (रसप्रिया)

"रह रहकर वह अपनी विकृत आवाज में पदों की कड़ी धरता धाँय-धाँय, साँय-साँय।
घिर नागि घिन ता! …!" (रसप्रिया)

"हीरामन ने धीरे-धीरे गुनगुनाकर गला साफ किया है—अ-अ-अ-सावना भादवा के-र उमड़त नदिया…गे-मे-या-ओ-ओ,
मैया गे रैनि भयावनि-हे-ए-ए-एँ;
तड़का तड़के करेजा-आ-आ मोरा
कि हमहुं जे बारी-नान्ही रे-ए-ए…।" (तीसरी कसम)

केवल लोकगीतों की पंक्तियाँ ही रेणु की कहानियों को संगीत नहीं दे देतीं। स्वयं चरित्रों के भीतर अपना-अपना वाद्य यन्त्र है जो समय समय पर बज उठता है।

"हीरामन ने आँख की कनखियों से देखा, उसकी सवारी…मीता…हीरा-

---

१. 'रेणु' की श्रेष्ठ कहानियाँ—प्रमुख स्वर, पृष्ठ ६।

बाई की आँखें गुजुर गुजुर उसको हेर रही हैं। हीरामन के मन में कोई अजानी रागिनी बज उठी। सारी देह सिरसिरा रही है ·।"

(तीसरी कसम)

"हीरामन के मन का पुरइन नगाड़े के ताल पर विकसित हो चुका है।"

(तीसरी कसम)

और 'तीन बिंदिया' कहानी तो संगीत और गंध के इन प्रभावों से भरी पड़ी है।

"गीताली! गीताली···मैं हूँ अकराम पिछले आठ साल से सुन रहा हूँ, सुन रहा हूँ क्योंकि उपभोग कर रहा हूँ तुम्हारे गीतों की गंध···। धान कूटती हुई चक्की चलाती हुई ढोर चराती हुई सुन्दरियों की देह की नमकीन गंध, धान खेतों की, पोखर और घाट पर पानी भरती हुई सुन्दरियों के आँचल की··· गंध···सुगंध···किसी वनफूल की···सुरभिमय गीतों की गायिका ने मेरी प्राण शक्ति तेज कर दी है···।"

और यह सुगंध हर पाठक की जेहन को तेज़ कर देती है। 'लाल पान की बेगम' में यह कड़वे तेल और लठवा सिंदूर की गंध है और जब बिरजू की मां की गाड़ी गाँव से बाहर होकर धान के खेतों के बगल से जाने लगी तो—"खेतों से धान के झरते फूलों की गंध आती है। बाँस की झाड़ी में कहीं दुद्धी की लता फूली है।" और हीरामन की गाड़ी में तो "चम्पा का फूल रह रहकर महकता है।" सुगंध के कारण ही उसकी पीठ में गुदगुदी लगती है।" एक बार इधर-उधर देखकर हीराबाई के तकिए पर हाथ रख दिया। फिर तकिए पर कोहनी डालकर झुक गया, झुकता गया। खुशबू उसकी देह में समा गई। तकिए के गिलाफ़ पर कढ़े फूलों को उंगलियों से छूकर उसने सूंघा, हाय रे हाय। इतनी सुगंध।"

ध्वनि और संगीत का सुन्दर चित्रण निम्नलिखित गद्यांश में बखूबी मिलता है और साथ ही 'रेणु' के वातावरण निर्मित करने की कुशलता का भी अन्दाज़ा किया जा सकता है:

"बाबू! सो गए क्या?

···चलो बाबू को फिर नींद आ गई। बाबू की नाक ठीक कुआनी-आवाज में ही डाकती है।···पैंटमानजी तो, लगता है लकड़ी चीर रहे हैं। गोपाल बाबू की नाक बीन जैसी बजती थी—सुर भों···असगर बाबू का खर्राटा···

सिंघजी फुफकारते थे और साहू बाबू नींद में बोलते थे "ए, डाउन दो—गाड़ी छोड़ा···।"

तार की घण्टी स्टेशन का घण्टा। गार्ड साहब की सीटी। इंजिन का विगुल! जहाज़ का भोंपा। सैकड़ों सीटियाँ···विगुल···भोंपा···भों···ओं···ओं···ओं।···!!"

(एक आदिम रात्रि की महक)

४. सहायक नाद

'रेणु' की कथाशैली वातावरण को स्पष्ट उभरने और सम्प्रेषक बनाने के लिए संगीत के ठोस या स्थूल रूप में नहीं लेती बल्कि हम कह सकते हैं कि संगीत की अपेक्षा नाद पैदा करती है। नाद से ध्वनि व्यंजना निकलती है। खुद रेणु इस ध्वनि को 'सहायक नाद' कहते हैं, "जिसको ओवरटोन कहते हैं। नाद कभी अकेला उत्पन्न नहीं होता। उसके साथ-साथ अन्य नादों का भी जन्म होता है।" 'तीन बिंदिया' से लिए गये ये अंश केवल गीतालीदास पर ही लागू नहीं होते या केवल उसी के लिए उपयोगी नहीं अपितु हर पाठक के लिए। वास्तव में रेणु की शैली ही शब्दों और वाक्यों में ध्वनि और व्यंजना पैदा करने की गर्ज से निखरती है। हम कई बार कहानीकार 'रेणु' के संकेतों, ध्वनि व्यंजनों पर सोचने को विवश हो जाते हैं लेकिन उनके ये ध्वनि संकेत दुरूह नहीं होते।

"गीताली इन बिंदियों को अलख मुखर जगत की खिड़की समझती है। तीन गोल गोल लाल काँच वाली। अन्दर प्रकाश होता है। अलख मुखर जगत् का व्यापार शुरू हुआ।" (तीन बिंदिया)

"हीरामन का जी जुड़ा गया। हीराबाई ने अपने हाथ से उसका पत्तल बिछा दिया, पानी छींट दिया, चूड़ा निकाल कर दिया! इस्स! धन्न है, धन्न है! हीरामन ने देखा भगवती भोग लगा रही है। लाल ओठों पर गोरस का परस।···पहाड़ी तोते को दूध-भात खाते देखा है···?" (तीसरी कसम)

अन्तिम वाक्य से सारा प्रसंग बदल जाता है और समूचा अर्थ एक ही नई सीमा तक खींचा जाता है। एक नई ही ध्वनि निकलती है जो हमें हीराबाई की अपेक्षा हीरामन के बारे में ज्यादा बताती है। इस अनुभव का प्रथम आभास अन्तिम पंक्ति से हीरामन को कैसा हुआ यह रेणु एक उत्तर की आवश्यकता न रखने वाले हल्के से प्रश्न से बताता है।

५. मैथिली बनाम खड़ी बोली

रेणु की भाषा-शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि केवल कुछ अपरिवर्तनीय या हरिप्लेसेब्ल मैथिली शब्दों को छोड़कर उनका वक्ता और चरित्र दोनों खड़ी बोली ही बोलते हैं, यद्यपि कहानियों का आँचल ग्राम सम्बन्धी होता है और ग्राम कहानियों का वातावरण हमारे सामने गाँव और केवल गाँव ही उपस्थित करता है। फिर 'रेणु' ने वह ग्रामांचल लिया है जिसके साथ वह सम्बद्ध रहे हैं जिसके साथ वे परिचित हैं और जो संयोगवश विहार प्रदेश में पड़ता है—जहाँ की बोली हिन्दी भाषा की ही एक अन्तरंग बोली है। यदि 'रेणु' की कहानियों का वक्ता खड़ी बोली बोलता लेकिन चरित्र अपना सम्पूर्ण वार्तालाप मैथिली में ही करते तो कुछ भी अस्वाभाविक न होता। लेकिन होता कुछ और है। सब के सब खड़ी बोली बोलते हैं और जहाँ कहीं मैथिली का शब्द या मुहावरा आ जाता है उसे लेखक उद्धरण चिह्नों में दे देते हैं। प्रेमचन्द के चरित्र भी गाँव से सम्बन्धित हैं और उनके गाँव भोजपुरी भाषी क्षेत्र में पड़ते हैं वे भी खड़ी बोली बोलते हैं लेकिन प्रेमचन्द के प्रसंग में यह प्रश्न नहीं उठता क्योंकि प्रेमचन्द ने अपने गाँवों को बिम्बों और चित्रों में, संगीत ध्वनि गंध और रूप से सहायक नाद के साथ प्रस्तुत नहीं किया। उनकी कथाओं में उस प्रकार के वातावरण की कमी है जो हमें यथार्थ के बीच में ले जाता है। प्रेमचन्द ग्रामीण जीवन के कितने भी पारखी रहे हों उन्होंने उस जीवन का केवल विषयगत चित्रण किया स्वयं उससे कटकर दूर रहकर प्रेमचन्द का वक्ता उनके चरित्रों से अलग अपना व्यक्तित्व रखता है। जबकि रेणु का वक्ता कभी स्वयं भी एक चरित्र होकर और कभी पूर्णतः अनुपस्थित होकर और स्थिति में खोकर ही रहता है। 'रेणु' हमें ग्रामीण यथार्थ के बीच में ले जाते हैं और हम उनके अंचलों की धड़कनें साफ सुनते हैं। प्रेमचन्द के इस निर्वाह की दृष्टि से उनके चरित्रों का अपनी बोली न बोलना अखरता नहीं अपितु ठीक ही जंचता है। 'रेणु' के चरित्र मैथिली बोल सकते थे और हमें वह अखरता नहीं लेकिन वे खड़ी बोली बोलते हैं। उनका खड़ी बोली बोलना उपर्युक्त तर्क से हमें अनुचित जंचना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं होता। हमें उनकी इस विशेषता के बावजूद उनका खड़ी बोली बोलना अस्वाभाविक नहीं लगता और यही रेणु की भाषा-शैली की सफलता है। वे खड़ी बोली के माध्यम से ही हमें मैथिली के प्रांगण में ले

जाते हैं और मिथिला की धरती एक बारगी उनकी रचना में सजीव हो उठती है।

जहाँ तक मथिली शब्दों का सम्बन्ध है रेणु की कहानियों में हमें ऐसे शब्द उतने ही मिलते हैं जितने उंगलियों पर गिने जा सकें। कुछ उदाहरण ये हैं—मूलगेन, चुभोना, अरवाइन, सभाचट्टी, मथ जाना, दाजू, पगहिया, सोनोली, कनवां, कन्नारोहट, फुजेगिरी, छेंका आदि।

बहुत सारे शब्द ऐसे हैं जो सामान्य तद्भव या देशी शब्द हैं, अंग्रेजी शब्द भी हैं। कमोवेश इन शब्दों का यही रूप हर भारतीय ग्राम में मिल सकता है—जातरा, नच्छतर, घरघुसरा, डागडर, जकशेन, कानकुवुज, गमकोआ, कपड़घर, गाछ-बिरिच्छ, सितलमिटी, टिसन, बतकही।

मैथिली एक अलग भाषा ?

लेकिन चूंकि रेणु का कथांचल मिथिला है, इसलिए मैथिली भाषा के बारे में ज़रा सविस्तार जानना आवश्यक है। मैथिली बिहार प्रदेश की तीन प्रमुख बोलियों में से एक है। आज तो बिहार की भाषाओं को भी हिन्दी की ही बोलियाँ मानते हैं, यद्यपि पिछले वर्ष मैथिली को भारतीय संविधान की स्वीकृत और अनुसूचित भाषाओं में एक स्वतन्त्र अस्तित्व दिए जाने की सिफारिश हुई और इसका स्थान साहित्य एकेडेमी में एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में माना गया। सर जार्ज ग्रियर्सन मैथिली को बिहारी भाषा की एक बोली मानते हैं। उनके अनुसार बिहारी हिन्दी से अलग एक भाषा है और उसकी तीन बोलियां हैं—भोजपुरी, मगही और मैथिली। बिहारी हिन्दी की अपेक्षा पूर्वी भारत की भाषाएँ बंगला, उड़िया और असमी के निकटतर है।"[१] ग्रियर्सन अपने इस निष्कर्ष का आधार इन भाषाओं की भाषावैज्ञानिक समानता लेते हैं। इनकी योगात्मक श्लिष्टता एक जैसी है। लेकिन इसी सांस में ग्रियर्सन एक भिन्न मत प्रकट करते हैं जिससे उनके पहले मत की दृढ़ता में फर्क आ जाता है।

1. "It certainly belongs to the same group as Bengali, Oriya, Assamese."…"Like Bengali, Oriya & Assamese it is a direct descendent, perhaps the most direct descendent of an old form of speech known as Magadhi Prakrit and has so much in common with them in its inflexional system that it would almost be possible to make one group of all the four languages :

Linguistic survey of India. Vol.V part II. pp. 1.

पहले मत के अनुसार वे बिहारी को सर्वथा पूर्वी भाषा-समूह का अंग मानते हैं और दूसरे मत के अनुसार इसे बंगाली और 'पूर्वी हिन्दी' के बीच का सेतु समझते हैं।[1] जार्ज ग्रियर्सन के विरोधी मत को जाने भी दें फिर भी यह तथ्य रहता है कि बिहारी भाषा हिन्दी से भिन्न नहीं अपितु हिन्दी का ही एक अंग है। यदि बिहारी की उपभाषाओं को हिन्दी की दूसरी बोलियों से अलग भी मानें फिर भी वे हिन्दी के विस्तृत क्षेत्र के अन्तर्गत ही आ सकती है। हर भाषा की एक संस्कृति भी होती है। राजस्थान, उत्तर प्रदेश या बिहार भर में एक ही हिन्दी भाषा की एक सांस्कृतिक इकाई है। बोलियाँ भिन्न होती ही हैं और फिर हिन्दी भाषी क्षेत्र के भौगोलिक दृष्टि से दो भाग किए गये हैं, एक हैं केन्द्रीय या मध्य क्षेत्र जिसमें उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की बोलियाँ गिनाई जा सकती हैं।

मैथिली-पूर्णियाँ की बोली

बिहार की तीन उपबोलियों में मैथिली का स्थान प्रमुख है। फणीश्वरनाथ रेणु ने पूर्णियां ज़िले के ही आंचल को कथा का आंचल बनाया है। यहाँ मैथिली बोली जाती है। पूर्णियां ज़िले के अतिरिक्त मैथिली भागलपुर जिले में भी बोली जाती है। १९११ की जनगणना के अनुसार सर जार्ज ग्रियर्सन ने बताया है कि मुसलमान मैथिली नहीं बोलते बल्कि उनकी बोली अवधी से मिलती है। इसे शेखाई मुसलमानी या जुलाहा बोली कहते हैं और विदेशी बोलियों अर्थात् भोजपुरी और मगही की अपेक्षा मैथिली बहुत ही पारस्परिक भाषा और सांस्कृतिक विशेषताओं को संजोए हुए है। मैथिल अपनी भाषा से प्यार करने में औरों से बढ़कर है। कवि विद्यापति ने "देसिल बअना सब जन मिट्ठा" कहकर अपनी भाषा के प्रति स्नेह प्रदर्शन किया था। उसका एक कारण यह भी है कि मैथिल प्रकृति से ही यात्रा भीरू होते हैं और अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को स्थिरता प्रदान करते हैं।[2]

---

1. We observe that taking Grammatical forms as the test, Bihari occupies a position intermediate between Bengali and Eastern Hindi. (I bid. pp. 2).

2. "Of the three nationalities which occupy Bihar, the Maithili, the Magadhi and the Bhojpuri, the first are a timid homestaying people who rarely leave their abodes for distant Provinces of India." (Ibid. pp. 16).

विद्यापति के समय में मैथिली को 'अवहट्ठ' कहते थे। 'अवहट्ठ' 'अपभ्रष्ट' का अपभ्रंश है। वह चौदहवीं शती की बात थी। अब तो इसे मैथिली नाम से ही जाना जाता है। कई विद्वान अभी भी इसे ग्रामीण या गंवारू बोली समझकर 'अवहट्ठ' समझना जारी रखे हैं।[1] लेकिन यह अनुचित और समय तथा तर्क के विरुद्ध है। ये विद्वान ऐसा इसलिए मानते हैं क्योंकि यहाँ के मुसलमान उर्दू बोलते हैं और हिन्दी और उर्दू को एक मानते हैं लेकिन कई अनपढ़ ऐसे भी हैं जो मैथिली को हिन्दी ही मानते हैं।[2] यानी कि ऐसे लोग आधुनिक विलगतावादी राजनीति से प्रभावित नहीं हुए हैं और सही हैं।

'रेणु' में मैथिली

मैथिली का यह उपर्युक्त वर्णन अप्रासंगिक होते हुए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि चरित्र जो भाषा बोलते हों या जिस भाषागत भूगोल से सम्बद्ध हों उससे परिचित होना आवश्यक बन जाता है। मुख्य फिर भी यह बात रहती है कि भाषा कथ्य के अनुरूप होनी चाहिए। "कथा के अनुरूप भाषा की खोज की समस्या हर कलाकार को ललकारती है। 'गोदान' और 'नदी के द्वीप' की भाषा का अन्तर दो कथ्यों के अनुरूप ही है।"[3] इसलिए हर कहानीकार की ही तरह 'रेणु' के लिए भी यही समस्या रही कि कथा के अनुरूप भाषा हो। कथ्य और भाषा समान आवश्यक और परस्पर सम्बद्ध होते हैं और दोनों के संतुलन से कहानी में निखार आता है। "चित्त का प्रसादन जितना कथा की मौलिकता से होता है उतना ही शैली से। पद-पद पर प्रसन्नता प्रदान करना और उत्सुकता को कायम रखना जो कथावस्तु की आवश्यकताओं में से है बहुत कुछ शैली पर निर्भर करता है।"[4]

---

1. The practice of referring to Maithili as APBHRAMSA continues upto this day amongst the Pandits of Mithila. Pt. Mukunda Jha···also called it Maithili Apbhramsa. ···The formation of Maithili Language: Subhadra Jha (Luzac and Co. London. pp. 4).
2. Among the uneducated Maithili, is called Hindi also (Ibid).
३. नई कहानी : संदर्भ और प्रवृत्ति : देवीशंकर अवस्थी, पृष्ठ २२।
४. काव्य के रूप : गुलाबराय, पृष्ठ १८३।

६. निर्वाह और एप्रोच

'रेणु की शैली की अन्तिम विशेषता है रोमानियत की। रोमान कथाओं में चरित्रों में होता है लेकिन उन्हें यह विशेषता शैली और भाषा देती है। निर्वाह कथा में संवेदना पैदा करता है। "कथावस्तु के धरातल पर इसमें (तीसरी कसम में) कोई भी असामान्यता नहीं है लेकिन फिर भी सर्वश्रेष्ठ कहानियों में इसकी गणना होती है—इसका कारण 'रेणु' का एप्रोच और निर्वाह है। यों यह ऐसे जीवन और घटनाओं और चरित्रों का चित्र है जिनके विश्वास पुरातन और रोमांटिक हैं मगर यहाँ घटना और चरित्र गौण है। उनकी आंतरिक संवेदनाएँ ही प्रमुख हैं।"[१]

श्री धनंजय वर्मा के ये शब्द यद्यपि केवल 'तीसरी कसम' के लिए कहे गये हैं तथापि ये 'रेणु' की सब कहानियों के लिए सच हैं। 'रेणु' का एप्रोच या निर्वाह ही उसके सामान्य कथानकों, सीधी और साधारण घटनाओं सपाट चरित्रों में प्राण फूंकता है। यह ठीक है कि 'रेणु' जनसामान्य के सामान्य अन्ध-विश्वासों, रीति-रिवाजों, सरलता और गंवई क्वारेपन को आत्मीयता के साथ चित्रित करता है उनसे खुद बंधा होकर उनमें खुद को खोकर—इससे सारा वातावरण रोमान से भर जाता है—और शैली भी रोमांटिक हो उठती है।

संवेदना

रोमानियत से 'रेणु' आदर्शवादी या यथार्थ से विमुख नहीं हो उठते। यथार्थ की तह में पैठकर वे हमें गाँव की अछूती सतह पर ले जाते हैं और इस तरह उनका यथार्थवाद और सच्चा हो उठता है। लेकिन प्रेमचंद के करुणोत्पादक यथार्थ की अपेक्षा 'रेणु' का यथार्थ संवेदनात्मक है। इस संवेदना को उभारने में उनकी रोमान भरी शैली सहायक होती है, प्रेमचन्द में यह रोमान नहीं। फिर ये मूलतः और अन्ततः कवि हैं। प्रेमचन्द गद्यकार ही थे। गद्य का यथार्थ-जन्य खुरदुरापन उनकी शैली में मिलता है। 'रेणु' में गद्य काव्यमय हो उठता है क्योंकि उसमें सोंधी धरती की सुगन्ध रची बसी है। चरित्र अपनी सब विचित्रताओं के बावजूद कविता की ही सीमारेखा पर रचे गए हैं।

---

१. आलोचना त्रैमासिक-३४, भाग २, पृष्ठ १०७।

अज्ञेयी-रोमान

'रेणु' की इस रोमानवी शैली के कारण राजेन्द्र यादव लिखते हैं-- "मूलतः अपने सारे यथार्थवाद के बावजूद उसका साफेस्टीकेशन बताता है कि वह कोमलता का कथाकार है···'अज्ञेइयन' रोमानियत के साथ···।"[1] इस कथन से 'रेणु' की शैली के बारे में दो तथ्य उभरते हैं—साफेस्टीकेशन (अभिजात्य) और अज्ञेइयन रोमानियत । अभिजात्य कथाकारिता को एक महत्ता का रंग दे देता है एक महनीयता का रंग । 'रेणु' में वातावरण अपनी चुनी हुई शब्दावली और अर्थ की गरिमा के कारण रचा जाता है, अतः वह साधारण न होकर अभिजात हो उठता है और दूसरी बात यह है कि 'रेणु' की रोमानियत 'अज्ञेय' की सी है । अज्ञेय हिन्दी कहानी के इतिहास[2] में अधिकतर अपनी गद्य शैली के कारण एक विशेष स्थान रखते हैं । उनकी रोमानियत छायावादी रोमान से इस दृष्टि से भिन्न है कि छायावाद में केवल अर्थ कल्पना प्रधान सांकेतिक और कोमल हुआ करता था । अज्ञेय में खुद शब्द की रचना ही उसे कोमल और कल्पनायुत बना देती है । 'रेणु' में भी ऐसी ही बात है । अज्ञेय मूलतः कवि हैं और 'रेणु' की मनोभूमि भी कवि की सी है, जभी तो 'रेणु' को कदम-कदम पर अपने और दूसरे कवियों के शब्द-चित्र और बिम्ब याद आते हैं । 'मैला आंचल' में प्रशान्त पूर्णियां में आकर ही पंत की पंक्तियां स्मरण कर उठे थे और उन्हें वन्ध्या धरती के भोले जीवन की संजीवनी और नाशकारी शक्तियों का पता लगाने की प्रेरणा मिली थी । दूसरी बात 'दिनकर' की कविता 'रेणु' के प्रशांत से भी पुकार उठी थी 'चलो कवि वन फूलों की ओर' । तीन बिंदियाँ कहानी में गीताली सोचती है—"मन की अनगिनत खिड़कियों से झाँकने वाले चेहरे खुद नहीं बोलते क्या ?···?···बात बोलेगी, मैं नहीं । राज खोलेगी बात ही ।" किसी शिल्पी का जवाब गीताली के मन में कौन पारखी रट रहा है । ····· नये कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता ही वास्तव में याद आ रही थी गीताली को । वास्तविक कविताओं से उद्धरण देने के अतिरिक्त स्वयं 'रेणु' के द्वारा उभारे गए बिम्ब उनकी अर्धकाव्यात्मक शब्दावली में निखर उठते हैं ।" उसने उलट करके देखा, बोरे भी नहीं बांस भी नहीं, बाघ भी नहीं···परी···देवी···मीता···हीरादेवी···महुआ घटवारिन···को-ई नहीं । मरे

---

१. रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ—राजपाल, पृष्ठ ७ ।

२. देखिए इस प्रबन्ध का दूसरा परिच्छेद ।

हुए मुहूर्तों की गूँगी आवाजें मुखर होना चाहती हैं। हीरामन के होंठ हिल रहे हैं। शायद वह तीसरी कसम खा रहा है—कम्पनी की औरत की लदनी···"

(तीसरी कसम)

"ढिबरी की रोशनी में धान की बालियों का रंग देखते ही बिरजू की माँ के मन का सब मैल दूर हो गया। ···धानी रंग उसकी आँखों से उतर कर रोम-रोम में घुल गया।"

(लाल पान की बेगम)

"चाँदनी जहाँ लम्बे-लम्बे शाल वृक्षों की फुनगियों पर टंगती नहीं रहती, श्यामल मसृण घास पर बिछी रहती है। पास ही बहती हुई पहाड़ी नदी कलकल कुलकुल नहीं करती। हवा फुसफुसाकर बात करती है। चांदनी··· चैत की।"

(तीन बिंदिया)

गद्य और पद्य

रेणु की इस रोमानवी शैली के लिए उसकी काव्यमयी भाषा भी जिम्मेदार है। वह भी, छायावादी काव्य की सी भाषा 'रेणु' में नहीं मिलती, नहीं मिलनी चाहिए। अज्ञेय की भाषा-शैली नयी कविता की सी है, रेणु की भी वैसी ही है। भाषा को पद्यमय बनाना चाहिए या नहीं इस पर विभिन्न आलोचकों के विभिन्न मत हैं। डा० देवीशंकर अवस्थी मानते हैं कि "काव्य की अपेक्षा गद्य में शब्दार्थ सम्बन्ध कहीं अधिक दृढ़ता और अनिवार्यता के साथ परम्परित रूप में निश्चित होते हैं इसलिए शब्द के स्थान पर शब्दों के बनने वाले चरित्र सम्बन्धों और स्थितियों के गुम्फन का उद्‌घाटन ही यहाँ पर मुख्य होता है।"[1] बात यही है। उपन्यास या कहानी के गद्य में शब्दों की अपनी परम्परा होती है। इसलिए उन्हें भले ही पद्यमय बनाया जाये उनके मूल रूप में भले ही फर्क आ जाये, उससे गद्य के अस्तित्व को कोई खतरा नहीं। सिर्फ आवश्यकता इस बात की है कि गद्य अपना मूल कर्त्तव्य निभाये। गद्य का मूल उद्देश्य वर्णन करना है। कविता यदि वर्णनात्मक होती है तो वह उसके लिए दोष माना जाता है लेकिन वर्णन गद्य की आत्मा है। डा० विपिन कुमार अग्रवाल लिखते हैं:

---

१. नयी कहानी—संदर्भ प्रकृति, पृष्ठ २२।

"गद्य का स्वभाव वर्णनात्मक ही है। कहानी गद्य में बाँधी जाती है। इसलिए वर्णन उसका अभिन्न अंग है। कहानी का सारा दारोमदार इस पर निर्भर करता है कि वर्णन कितना सार्थक हो सका। वही वर्णन सार्थक है जो कहानी के आंतरिक संघटन को पुष्ट करता है। उसमें तथा निर्माण करता है, या प्रभाव को पुनः संयोजित करता है।"[1]

७. आंचलिक कहानी की परम्परा

'रेणु' की आंचलिक कथा शैली की कोई परम्परा उनसे पहले बनी थी, इसके बहुत प्रमाण नहीं मिलते। यह ठीक है कि नागार्जुन ने (बलचनमा) इस दिशा में संकेत किया था। लेकिन कोई निश्चित ठोस परम्परा नहीं बन पाई थी। रेणु को शून्य से शुरू करना पड़ा। वैसी 'नयी कहानी' सारी की सारी शून्य और परम्परा हीनता से ही शुरू हुई। नयी कविता ने परम्परा का तिरस्कार किया लेकिन नयी कहानी के पास कोई 'तात्कालिक' परम्परा ही न थी क्योंकि १९५० के तत्काल भूत में भारत में इतनी अशांति, इतना संघर्ष और इतनी अस्थिरता रही कि समाज का कोई भी रूप निश्चित नहीं हो पाया। "छः वर्षों तक चलता युद्ध, बयालीस का विप्लव, बंगाल का अकाल, नाविक-विद्रोह, स्वतंत्रता, दंगे, शरणार्थियों के काफिले, सरकारी भ्रष्टाचार और राजनीतिक पार्टियों की आपाधापी—सब कुछ एक के बाद एक इस तरह आता चला गया कि व्यक्ति मन के धरातल पर उस सबका समाहार कथाकार के लिए असम्भव हो गया।"[2] और जब यह स्थिति सामान्यतः नई कहानी की थी, आंचलिक कहानी की स्थिति तो और भी ढुलमुल थी। ऐसे में भी 'रेणु' ने एक नयी शैली का श्रीगणेश किया।[3]

८. हास्य में खिले चेहरे

हास्य 'रेणु' की शैली का अटूट अंग है वे हमें साधारण आदमियों के सामान्य कार्यालाप से परिचित कराते हैं। हमें उनकी साधारणता में भी हास्य

---

१. कहानी के सिलसिले में उठे नये सवाल, क ख ग, जुलाई १९६४।

२. 'किनारे से किनारे तक' की भूमिका—राजेन्द्र यादव।

३. रेणु का आगमन हिन्दी कथासाहित्य में एक धूमकेतु की तरह हुआ। आते ही उन्होंने महत्व के शिखरों का स्पर्श किया। इसका कारण नये-नये अंचलों की तलाश थी; नए अंचल केवल वस्तु के क्षेत्र में ही नहीं भाषा और संवेदना के भी।

(आलोचना-३४, पृ० १०६)

मिलता है जहाँ चरित्र ग्रामीण है वहाँ उनके ग्राम्यत्व से हास्य का अच्छा वातावरण तैयार हो जाता है :

'मेले से सभी पंच दिन दहाड़े ही गांव लौटे, सबसे आगे पंचायत का खड़ीदार पंचलाइट का डिब्बा माथे पर लेकर और उसके पीछे सरदार दीवान और पंच वगैरह। 'पंचलाइट' कहानी उन सब विशेषताओं का अक्षुण्ण भण्डार है जो ग्रामीण आंचल की कहानी में 'रेणु' पैदा करते हैं। गाँवों में इस तरह कई बार नई चीजों के आने पर हास्यात्मक स्थितियाँ पैदा होती हैं। लेकिन यह स्थिति खुद में उतनी हास्यपूर्ण नहीं जितना कि चरित्र इस स्थिति में पड़कर हास्यास्पद हो उठते हैं। 'पंचलेट' के सिवा कोई बात नहीं चल रही और खरीदने के लिए गए हुए गांव के लोग अपनी-अपनी चतुरता का बखान कर रहे हैं।

"दीवान जी ने कहा—अलबत्ता चेहरा परखने वाला दुकानदार है। पंचलेट का बक्सा दुकान का नौकर देना नहीं चाहता था। मैंने कहा देखिए दुकानदार साहेब, विना बक्सा पंचलेट कैसे ले जायेंगे। दुकानदार ने नौकर को डांटते हुए कहा—क्यों रे! दीवान जी की आँख के आगे 'घुरखेल' करता है; दे दो बक्सा।"

अन्त में पंचलाइट की रोशनी से सारी टोली जगमगा उठी तो कीर्तनिया लोगों ने एक स्वर में महावीर स्वामी की जय ध्वनि के साथ कीर्तन शुरू कर दिया। पंचलेट की रोशनी में सभी के मुस्कराते हुए चेहरे स्पष्ट हो गए।

———

परिच्छेद छः

मुखमण्डल के इर्द गिर्द कांपती सुरलहरी

समकालीन लेखक का व्यक्तित्व आंकना कठिन ; लेखक मौन ,
व्यक्तित्व शैली में प्रतिबिंबित,
पूर्णियां को घेरते अनेक नाम ; पर्याय रेणु,
बिहार, देश और वामपंथ,
नेपाल से सम्पर्क : क्रांति का समर्थन,
राजनीति : सत्तालोलुपता,
राजनीति : ईमानदारी की मौत,
राजनीति : विश्वासघात,
ज़लील राजनीति से पिटे व्यक्ति-चरित्र,
लतिका जी के करुण शीतल हाथ,
लोक संस्कृति के चिरस्थाई रंग,
समदुःखसुखी ; ख्याति भीरू,
नादस्वर जीवी चित्रकार,
साधारण : तड़क भड़क से दूर,
नास्तिक युग में आस्था ।

परिच्छेद छः

मुखमण्डल के इर्द गिर्द कांपती सुरलहरी

समकालीन लेखक का व्यक्तित्व आँकना कठिन

किसी भी जीवित लेखक के व्यक्तित्व को चित्रित करने में एक कठिनाई आती है सीधे सम्पर्क की। जितना हमारा किसी भी व्यक्ति के साथ सीधा सम्पर्क हो उतना उसको हम कम जानते हैं। जानने से यहाँ तात्पर्य आलोचना की दृष्टि से जानना है। वर्तमान और फिर हमारे समकालिक जीवन से जुड़ा हुआ वर्तमान हमारे अपने जीने का काल होता है और जिस में खुद जीते हैं उसमें अलग होना कठिन होता है। अलग हुए बिना उसे आलोचक की दृष्टि से नहीं देख सकते। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ४५ वर्ष के हैं। वर्तमान युग के साथ उनका सीधा सम्पर्क है, अतः उनको युग से बाहर खींचकर उनका व्यक्तित्व चित्रित करना कठिन है। किसी लेखक ने इसीलिए लिखा है कि जब तक कोई लेखक इतिहास का भाग नहीं बन पाता तब तक उसकी व्यक्तिगत विशिष्टता ज्ञात नहीं हो सकती। हमारा कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि हर लेखक में वे तत्व ढूंढने की कोशिश करें जो केवल उसके हैं और परम्परा से भिन्न हैं। वरना सामान्य विशेषताएं तो लेखक समुदाय में समान पाई जा सकती हैं। कहानीकारों का व्यक्तित्व भिन्न वातावरणों लेकिन समान आधारभूत तत्वों से बनता है। इसी तरह कवियों के व्यक्तित्व में विचारप्रधानता या भावुकता होती ही है, लेकिन उनकी मात्रा में इन्हीं तत्वों के आधार पर अन्तर होता है। फिर जीवित लेखक की जीवन यात्रा के किसी चरण पर खड़े होकर ही हम उनके व्यक्तित्व या विचारधारा या फिर खाली कृतित्व के बारे में कोई राय नहीं दे सकते। या तो वह अन्तिम नहीं हो सकती या आमूल परिवर्तनीय भी हो सकती है। वह राय भी उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को नहीं ले सकती। व्यक्तित्व केवल जीवन भर की घटनाएं नहीं बनातीं। जीवनी ही व्यक्तित्व

नहीं और न केवल विचारधाराएँ व्यक्तित्व होती हैं। व्यक्तित्व जीवन की प्रमुख व्यक्तिगत घटनाओं, विचारधाराओं, समय-समय पर प्रचलित मूल्यों के प्रति बदलती प्रवृत्तियों और दृष्टियों का समवेत नाम है। जब हम जीवित लेखक को ले लेते हैं और उसके व्यक्तित्व पर अन्तिम निर्णय दे देते हैं तो समय के और उस लेखक के भी आगामी विकास से एकदम इन्कार करते हैं। भविष्य में उस लेखक का वातावरण क्या रहेगा—मूल्य रहेंगे कि बदलेंगे, उसका रुझान (attitude) बदलेगा कि नहीं – इस सबके लिए हमें अवकाश छोड़ना चाहिए।

लेखक मौन

इस प्रसंग में दूसरी कठिनाई तब आती है जब लेखक खुद अपने बारे में कुछ कहता हो। वह अपनी रचना और अपने व्यक्तित्व या कृतित्व के बारे में खुद अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता हो। यद्यपि स्वयं लेखक का दृष्टिकोण महत्वपूर्ण होता है फिर भी पाठक या आलोचक इससे बंध ही जाता है। स्वयं अपने अध्ययन से निकालते हुए परिणामों में उसे सन्देह होने लग सकता है। ऐसी स्थिति में आलोचक अपने परिणामों और लेखक के दृष्टिकोण में एक समझौता करके निष्कर्ष निकालता है।

रेणु का व्यक्तित्व शैली में प्रतिबिंबित

फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने अपने बारे में नहीं के बराबर लिखा है। इस पाठिका के निजी पत्रों का उत्तर भी उन्होंने नहीं दिया। इससे उनके अपने दृष्टिकोण का विशेष पता नहीं चल सकता। लेकिन यह अधिकांश प्रबुद्ध आलोचकों का विचार है कि लेखक अपने कृतित्व से अलग कुछ भी नहीं होता। श्री हर्बर्ट रीड[1] के अनुसार पुस्तक पढ़ते समय पुस्तक के पीछे बैठे हुए आदमी को भी पढ़ना चाहिए। हर पुस्तक के पीछे पुस्तककार या लेखक बैठा रहता है। 'रेणु' पर तो यह और भी लागू होता है। हर कहानी में 'रेणु' बार-बार जी उठता है और पाठक के सामने चित्रित होता है। पिछले अध्याय में 'रेणु' की भाषा-शैली के संदर्भ में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि शैली की दृष्टि से 'रेणु' अकेला है। उसने स्वयं अपने लिए नहीं शैली प्रचलित की। और कहावत

1. On Reading Books,

है कि 'शैली मनुष्य है' (Style is the man) इसलिए अपनी अकेली शैली के कारण 'रेणु' का व्यक्तित्व भी अकेला और अनूठा हो उठा है और यह सारा व्यक्तित्व उसके कृतित्व को छोड़कर कुछ नहीं रह जाता।

पूर्णियाँ को घेरते अनेक नाम

फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म ४ मार्च १९२१ को पूर्णियां में हुआ। पूर्णियां बिहार का एक प्रमुख जिला है। 'तीसरी कसम' कहानी में उल्लिखित जोगबनी, फारबिसगंज, विराटनगर, तेगछिया, ननतपुर, हरिपुर सब पूर्णियां के आस-पास ही पड़ते हैं। "फारबिसगंज तो हिरामन का घर दुआर है।"[1] "दक्खिन, कटिहार से आने वाली बस अररिया कोर्ट से डेढ़ घण्टे में और उत्तर जोगबनी-फारबिसगंज से चलने वाली गाड़ी को एक से सवा घण्टे तक लग जाता है।"

(अच्छे आदमी)

"पन्द्रह बीस साल पहले तक विद्यापति नाम की थोड़ी पूछ हो जाती थी। शादी-व्याह यज्ञ-उपनैन, मुंडन-छेदन आदि शुभ कार्यों में बिददतिया मण्डली की बुलाहट होती थी। पंचकौड़ी मिरदंगिया की मण्डली ने सहरसा और पूर्णियां जिले में काफी यश कमाया है।"

(रसप्रिया)

"नांगछिया टीसन ? अभी कहा ? कटिहार में गाड़ी बदलने के बाद रात के एक बजे नौगछिया !"

(तीर्थोदक)

"नाम में क्या है बाबू जो मन में आये कहिए। हजार नाम···।"

"तुम्हारा घर सन्थाल परगन्ना में रांची हज़ारी बाग की ओर ?"

(एक आदिम रात्रि की महक)

"···बाबू भी खूब हैं। नाम का 'अरथ' निकालकर अनुमान लगा लिया—घर सन्थाल परगन्ना या रांची हज़ारी बाग की ओर होगा किसी गांव में ?···"

(एक आदिम रात्रि की महक)

"लकड़ी के एक बक्से में सारी गृहस्थी बन्द करके—आज यहाँ कल वहाँ। ·· पानी-पाड़ा से भात गांव, कुरैंढा से रौताड़ा। फिर हेड-क्वार्टर कटिहार।"

(एक आदिम रात्रि की महक)

---

१. तीसरी कसम।

पूर्णिया का पर्याय रेणु

रह रह कर पूर्णिया मुखर हो उठता है 'रेणु' की कहानियों में। पूर्णिया कटिहार फारबिसगंज जैसे बड़े-बड़े नाम भौगोलिक दृष्टि से सच हैं लेकिन छोटे-छोटे गाँव के वास्तविक होने न होने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि 'रेणु' का लेखन इतना प्रामाणिक लगता है कि वे सब नाम प्रामाणित लगते हैं। स्वयं 'रेणु' का जन्म 'औराही हिंगना' गाँव में हुआ। लेकिन पाठक को यह नाम भी ऐसे ही दूसरे कई नामों सा लगता है। अपने गल्प साहित्य में सृजित संसार के साथ 'रेणु' इतना जुड़ गए हैं कि बिहार का लोकजीवन 'रेणु' के जीवन का समानार्थक लगता है। दोनों एक दूसरे के पर्याय हो गए हैं। यही किसी लेखक की और विशेषतया कथाकार की सबसे बड़ी सफलता होती है।

बिहार, देश और वामपंथ

वास्तव में 'रेणु' यद्यपि बिहार के पूर्णिया ज़िले में जन्मे और बढ़े, वे केवल संस्कारों के द्वारा बिहारी रहे। उनका जीवन अधिकतर विशाल देशव्यापी कार्यव्यापार रत रहा। यदि उन्होंने किसी राजनीतिक आन्दोलन में भाग लिया तो देशव्यापी आन्दोलन में। यदि किसी सामाजिक समस्या में उलझे रहे तो उस समस्या की प्रकृति भी देशीय थी। सनातनता और साहित्य के चिरजीवन के लिए यह आवश्यक होता है कि अपने युग के प्रति समसामयिक वफादारी रहे। तुलसी आज भी इसीलिए महान् हैं और उनकी कृति इसीलिए आज भी देश और काल की सीमाओं के बावजूद जीवित है, क्योंकि वे अपने समय और स्थान के वर्तमान में जीते हैं। जितने हम अपने स्थानिक रंग में प्रामाणिक हों उतना हम सार्वदेशिक हो सकते हैं। जितना हम अपने आस-पास की समस्याओं को समझ कर अभिव्यक्ति दे सकें उतनी हममें सर्वकालीन समस्याओं को समझने की शक्ति आ सकती है। पूर्णिया बिहार के उत्तर में है जहाँ से कुछ दूरी पर नेपाल की सीमा है। नेपाल राजा की उपस्थिति का साक्ष्य उत्तरी बिहार के लोक-साहित्य में काफी मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि इस राजा के बारे में वहाँ का जन-जीवन क्या-क्या कल्पनायें करता होगा। फिर भारत के स्वा-तंत्र्य संग्राम एक संक्रमण-कालीन मोड़ पर था। दूसरे महायुद्ध में भारत भाग ले या नहीं। इस पर दो मत थे लेकिन क्रांतिकारियों ने शासक अंग्रेज का साथ न देकर देश के भीतर आतंकवादी आन्दोलन का जोर देना ही उचित समझा था। 'रेणु' ने इस अन्तर्देशव्यापी आन्दोलन में भाग लिया। बिहार भर में

सोशलिस्ट दल काफी लोकप्रिय है। इसका नवीनतम प्रमाण १९६७ में बना वहां का समाजवादी-दल-अधिकृत मन्त्रि मण्डल है। यद्यपि 'रेणु' के समाजवादी दल के कार्यकर्त्ता होने का यथेष्ट प्रमाण नहीं मिलता फिर भी उनके विचारों और कृतियों के आधार पर यह विश्वसनीय हो जाता है कि वे समाजवादी राजनीति से या कहें वामपंथी राजनीति से सम्बद्ध रहे।

नेपाल से सम्पर्क : क्रांति का समर्थन

नेपाल के साथ 'रेणु' के सम्पर्क और नेपाली राजनीति को गम्भीरता के साथ अपनाने और उसमें सक्रिय भाग लेने के कई प्रमाण हैं। भारत में जिन दिनों स्वतंत्रता संग्राम जोरों पर था, उन्हीं दिनों इसी के समानान्तर नेपाल में भी एक आंतरिक आन्दोलन चल पड़ा। नेपाल पर राणावंश के राजाओं का कई पीढ़ियों से शासन चल रहा था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के समानान्तर नेपाली कांग्रेस की स्थापना हुई जिसका नेतृत्व कोइराला-बंधु कर रहे थे। आगे चलकर इन्हीं बंधुओं में से एक विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला लोकतांत्रिक नेपाल के पहले प्रधान मन्त्री चुने गये (अब तो नेपाल में पुनः महाराज महेन्द्र ने शासन अपने हाथ में ले लिया है और अर्धलोकतांत्रिक और अर्ध एकतांत्रिक ढंग का मिला-जुला शासन चला रहे हैं) नेपाल के इस जनविद्रोह को भारत में काफी सहानुभूति और सहयोग प्राप्त था। 'रेणु' जिस दल में थे उनकी नेपाली क्रांति के प्रति सक्रिय सहानुभूति थी। कुछ देर के लिए नेपाल में ही रहकर नेपालियों के दोश व दोश काम करने के बाद 'रेणु, क्रांति के प्रचार विभाग का मुख्य नियत किया गया। "क्रांतिकारी के रूप में वह नेपाल को एकतंत्री राजशाही से मुक्त करने के लिए ऊबड़-खाबड़ तराइयों में भटकता रहा। उसने विद्रोही सेना का साथ दिया और विद्रोहियों द्वारा परिचालित नेपाल रेडियो का प्रथम डाइरेक्टर जनरल बना।"[1] यह रेडियो गुप्त था और 'रेणु' के लेखन की तीव्रता को इसके द्वारा राह मिली। खेद है कि इस समय के 'रेणु' के कृतित्व को कहीं प्रकाशन नहीं मिला, जिसे 'रेणु' के कृतित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष अव्याख्यायित रह जाता है। लेकिन फिर भी नेपाल के साथ उसका भावात्मक सम्बन्ध जहां तहां उनके कृतित्व में निखर और मुखर हो उठा है। 'परती परिकथा' कोसी नदी पर बांधे जाने वाले बांध और उसे परती भूमि में उगने वाली सम्भावनाओं की ही कहानी है और यह नदी भारत और नेपाल दोनों

---

१. मेरा हमदम मेरा दोस्त-पृष्ठ १५ (रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ)।

देशों में बहती है। वास्तव में इस उपन्यास का कथांचल सम्पूर्ण उत्तरी बिहार और नेपाल ही है।

'धरती नहीं धरती की लाश' जिस पर कफन की तरह फैली हुई है—बालूचरों की पंक्तियां उत्तर नेपाल से शुरू होकर दक्षिण गंगा तट तक पूर्णियां जिले के नक्शे के दो असम भागों में विभक्त करता हुआ फैला-फैला यह विशाल भूभाग···" (परती परिकथा—१९६१, पृष्ठ ९)

जहां भी जिक्र आता है 'रेणु' नेपाल का भाव-प्रवण उल्लेख करते हैं। उपर्युक्त उपन्यास में दिलबहादुर नामक चरित्र नेपाली हैं, उसके माध्यम से लेखक ने नेपाल के बारे में अपने अनुभव और विचार यों प्रकट किये हैं—

"···तलऽतिर। दिलबहादुर ने अपनी भाषा में संक्षिप्त उत्तर दिया। नीचे की ओर पहाड़ पर रहने वाले समतल भूमि को तलऽतिर कहते हैं।···एक छोटा-सा झरना किनारे पर बसा पांच घरों का गाँव, दिलबहादुर का गाँव। गाँव में सिर्फ बूढ़े, औरतें और बच्चे ही रहते हैं। लड़के जवान होते ही तलऽतिर मधेश की ओर चले जाते हैं। हाल ही में जवान हुए पहाड़ी लड़के उसे हमेशा घेरे रहते। अचरज भरी कहानियां सुनते-सुनते उनके दिल तड़प उठते हैं। तलऽतिर उतरने के लिए। जहां नमक की कोई कमी नहीं। बिना तेल के जहां रोशनी जलती हैं। टरेन गाड़ी पानी जहाज, हवाजहाज ···।"

(परती परिकथा-१९६१, पृष्ठ ७८)

कोई पलटन में भर्ती होने की अनिच्छा नहीं प्रकट करता। नेपाल का हर ज़वान, अंग्रेजी फौज में भर्ती होने के लिए ही जन्मा हो, जैसे। लेकिन दिल-बहादुर 'रक्सी (शराब) ऊख की शराब, रम, अंग्रेजी दारू में नहाते हुए जाएंगे।' के प्रलोभन के बावजूद पलटन में नहीं गया। कोई दूसरी नौकरी पाने के उद्देश्य से जब तलऽतिर जा रहा था तो रास्ते में झाउरे (एक पहाड़ी लोकगीत) की विरहिन के प्रश्नों का उत्तर देता गया :—

"ओ मधेश की ओर जाने वाले यदि तुम कभी लखनऊ शहर जाओ तो वहां के गारद में रहता है जो भला आदमी, उससे कहना - तुम्हारा बेटा दौड़ना सीख गया है और काली बाछी को तीसरा बाछा हुआ है।···"

(परती परिकथा-१९६१, पृ० ७९)

इसी तरह 'मैला आंचल' का चरित्र डा० प्रशान्त तो एक नेपाली स्त्री का ही पुत्र है। "प्रशान्त अज्ञात कुलशील है। उसकी मां ने एक मिट्टी की हांडी में डालकर बाढ़ में उमड़ती हुई कोशीमैया की गोद में उसे सोंप दिया था।

नेपाल के प्रसिद्ध उपाध्याय परिवार ने, नेपाल सरकार से निष्कासित होकर उन दिनों सहरसा अंचल में आदर्श आश्रम की स्थापना की थी...।"[1] और फिर उस हांडी में से उपाध्याय जी की स्त्री ने उनका उद्धार करके उनको पाला पोसा।

"आदर्श आश्रम में एक दुखिया युवती थी– स्नेहमयी। स्नेहमयी को उसके पति डा० अविलकुमार बनर्जी ने त्याग कर एक नेपालिन से शादी कर ली थी।"[2] जहां भी अवसर मिलता है। 'रेणु' नेपाल के साथ अपने चरित्रों का सम्बन्ध जोड़ते हैं। नेपाल के प्रति उनके हृदय में एक कोमल भावना है—एक स्थान सुरक्षित है। उनकी कहानियों में तो भारत नेपाल सीमा कई जगह पर चित्रित हो उठी है। भारत की स्वतंत्रता के बाद नेपाल एक स्वशासित अलग देश बना रहा। इससे कई समस्याएं पैदा हुईं। विशेषकर भारत-नेपाल सीमा पर तस्कर व्यापार की। यह 'रेणु' को हर समय कौंचता रहा है और उसका चित्रण उन्होंने कई बार किया है।

राजनीति : सत्तालोलुपता

राजनीति में जितना सक्रिय और वफादारी से भाग 'रेणु' ने लिया उतनी ही बेवफाई राजनीति ने उनसे की। इतने बड़े जनआन्दोलन में भाग लेकर 'रेणु' एक बड़े राजनीतिक पुरुष हुए होते, लेकिन उनका ईमानदार और विद्रोही व्यक्ति ४७ से पूर्व की निश्छल और त्यागपूर्ण राजनीति की छली, भोग और सत्तालोलुप राजनीति में परिणत होने की प्रक्रिया देख न सका। राजनीति मनुष्य को क्या से क्या बना देती है—मनुष्य और मनुष्य के स्वाभाविक और प्राकृतिक सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं और धूर्तता सरलता पर हावी हो जाती है, ईमानदार व्यक्ति परास्त हो जाता है और बेईमानी की जीत होती है। कथाकार कमलेश्वर 'रेणु' के बारे में ठीक ही लिखते हैं कि "नेपाल की मुक्ति के लिए रेणु ने अपने यौवन का बलिदान दिया और सक्रिय राजनीति में अपने को भूल कर जुटा रहा। इसी से वह टूट गया—उसने अपने शरीर को क्षत-विक्षत किया और सन् ५२-५३ में राजनीति के क्षेत्र से एक थके हुए योद्धा के रूप में लौटा और मरने का इन्तजार करने लगा।"[3]

---

१. मैला आंचल-१९५७, पृष्ठ ५९।

२. वही।

३. रेणु की श्रेष्ठ कहानियां, पृष्ठ १५।

ईमानदारी की मौत : राजनीति

राजनीति का यह घिनौना रूप 'रेणु' की हर कृति में मिलता है, उनकी कहानियों के सीधे सरल पात्र राजनीति के किसी दांव से किसी पेच से कसे जाते हैं और वे भयार्त आंखों से देखते हुए सरकारी अफसर के सामने मुस्कुराहट का नाट्य करते हैं। रेणु की रचनाओं में जिस राजनीति का उल्लेख हुआ है वह सन् ४७ के बाद की है और यह राजनीति सन् ४७—पूर्व की राजनीति से भ्रष्टतर है—यही ध्वनि उनकी रचनाओं में से निकलती है। 'मैला आंचल', 'परती परिकथा', 'जुलूस', 'दीर्घतपा', 'कितने चौराहे'—इन सब उपन्यासों में उनके चरित्र राजनीति के हथौड़े की चोट से घायल मिलते हैं, लेकिन उनमें बौखलाहट नहीं—क्योंकि यह हथौड़ा अपना है, स्वतन्त्र भारत का है। विदेशी चोट का जवाब आजादी के नारे से देते थे यही लोग, लेकिन अपनों द्वारा लगाई गई मार्मिक चोट का उत्तर किस से दें ? 'मैला आंचल' तो वास्तव में उन सरल ग्रामीणों की कथा है जो स्वतंत्रता-पूर्व और ऊपर की राजनीतिक धोखाधड़ी के शिकार हैं। छले वे पूरी तरह से जाते हैं और वे जानते हैं कि उनकी स्थिति क्या है, लेकिन अपढ़ गंवार होने के कारण आसानी से उनका मोह भंग नहीं हो जाता। यदि किसी का मोह टूटता भी है तो वह बदला लेने के बजाय अपनी ईमानदारी के कारण आत्महत्या करता है।

"बावनदास का मन बड़ा अविश्वासी हो गया है, किसी पर विश्वास को जी नहीं करता। गांधी जी को छोड़कर अब किसी पर विश्वास नहीं होता। वह गांधी जी को एक खत लिखवाना चाहता है।···" (मैला आंचल)

बावनदास उपन्यास के सबसे ईमानदार चरित्रों, कांग्रेसियों में से है और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद हुए व्यभिचार को देखते हुए उससे रहा नहीं जाता। वह बालदेव को सूचित करता है :—

"···सब आदमी अब पटना में ही रहेंगे। 'मेले' (एम.एल.ए) लोग भी हमेशा वहीं रहते हैं।···सुराज मिल गया अब क्या है ?···छोटन बाबू का राज्य है। एक कोरी बेमान, 'बिलेक मारकेटी' के साथ कचहरी में घूमते रहते हैं। हाकिमों के यहां दांत खिटकाते फिरते हैं।···सब चौपट हो गया।" बावनदास कहते-कहते रुक जाता है। (मैला आंचल, पृष्ठ ३९३)

राजनीति : विश्वासघात

इसी तरह समाजवादी रंग में रंगा हुआ इस उपन्यास का एक और राजनैतिक कार्यकर्त्ता कालीचरण दल की सैद्धान्तिकता में अटूट आस्था रखता

ही और स्वराज प्राप्ति के बाद छल से पकड़े जाने पर और निर्दोषिता के बावजूद डाकू घोषित किए जाने पर अपने दल-बन्धुओं, पार्टी के बड़े-बड़े कार्यकर्ताओं के पास जेल से भाग कर जाता है कि वे उसको धीरज बंधायेंगे पार्टी के लिए किए गए उसके निर्दोष और ईमानदार कार्य के कारण उसकी पीठ थपथपायेंगे और उसे चोर डकैत कहने वाले कांग्रेसी शासकों से उसकी रक्षा करेंगे, लेकिन जेल से भागता हुआ, गोली खाकर वह लुकता छिपता पार्टी आफिस पहुँच जाता है तो—'को औऽन ?···काली च-र-न ?' आफिस सेक्रेटरी राजबल्ली जी किवाड़ खोलकर सचमुच अवाक् हो गए। जीभ की नोंक पर बोली चढ़ी ही नहीं।

'ऐ ? कौन ? कालीचरण ?' सेक्रेटरी साहब भी घड़फड़ा कर कमरे से बाहर आते हैं—'ओ कालीचरण ! तुम हो ?···इसीलिए शहर में इतना हल्ला हो रहा है। जेल से भाग आए हो ?'

'जी लगता है, जांघ में गोली लग गई है···।'

'तुम्हारे कलेजे पर गोली दागी जानी चाहिए।'[१]

'डकैत ! बदमास !' कालीचरण की घिग्घी बंध गई। इसकी उसे आशा नहीं थी। उसका सारा मोह टूट गया।

संक्षेप में कह सकते हैं कि रेणु का कोई ऐसा चरित्र नहीं जो राजनीति के दाँव-पेच में पड़कर छल और कपट की बलि न चढ़ा हो।

ज़लील राजनीति से पिटे चरित्र

'परती परिकथा' का जितेन्द्र यद्यपि लोकमंच की स्थापना या परती-पुनरुद्धार में लीन ही रहता है, लेकिन इससे पूर्व वह भी राजनीति के नीचतम हरबों और घिनौने कृत्यों का शिकार रह चुका है। उसकी ईमानदारी और कार्यकुशलता का कोई मूल्य नहीं माना गया और उसे एक दल से निकाल कर दूसरे द्वारा उछाला गया। किसी ने उसे स्वीकारा नहीं। राजनीति में 'राज-नीति' नहीं, निजी उपकार-प्रतिकार की ही भावनायें काम करती हैं और निजी स्तर पर धोखा-धड़ी के सम्बन्ध ज्यादा महत्व रखते हैं। लेकिन "लांछना, उपमान, असफलता और निराशा को झेलकर भी वह समाज से बंधा रहना चाहता था। समवयसी, समधर्मा, समभाव स्त्री-पुरुषों की छोटी गोष्ठी में जीने भर खुली हवा पाकर ही प्रसन्न था···।"[२]

---

१. मैला आंचल—१९५९, पृष्ठ ३७९।

२. परती परिकथा—१९६१, पृष्ठ ४५७।

यही स्थिति खुद रेणु की थी। रेणु १९४२ से लेकर बहुत देर तक राजनीतिक सक्रियता में व्यस्त रहे।

"वे दिन कितने भयावह रहे होंगे जब 'रेणु' के चारों ओर दमघोट अंधेरा सरकती आती मौत के पांवों की आहट का सन्नाटा और निकट अकेलापन होगा। तब कितना छटपटाया होगा यह व्यक्ति, कितनी बेबसी होगी। इन आंखों में जिनमें आज एक अलौकिक तेज़ है···।"[1]

राजनीति से संन्यास लेने का एक और कारण भी 'रेणु' के लिए था—'वे सन् ५२-५३ में एक लम्बी बीमारी भोगते रहे। हमसे खुद ही राजनीति की सक्रियता से वे दूर रहे और शायद राजनीति ने भी उन्हें अशक्त या अनुपादेय समझ कर तजा होगा। राजनीति की बात तो और खुद अपनों ने भी उसे छोड़ा होगा। अपने कथाकार मित्र कमलेश्वर से उन्होंने अपनी बीमारी और उससे उत्पन्न करुण स्थिति का वर्णन यों किया है :—

लतिका जी के करुण शीतल हाथ

"५२-५३ में बीमारी से मेरी ऐसी हालत हो गई थी कि घर वालों और मित्रों ने मुझे अस्पताल में फिकवा दिया था—यही समझकर कि मैं वहीं मरूँ···शरीर टूट गया था···मेरे चारों तरफ घुप्प अंधेरा था। मैं एकदम अकेला था और यह जान रहा था कि मैं मर रहा हूँ···तभी मुझे लतिका मिली थी। उस अस्पताल में नर्स थी। लतिका ने मुझे जिलाया···साधुओं की तरह लिपटी जटाओं को कई हफ्तों एक निरन्तर साफ किया और लतिका ने अपना सब कुछ भुलाकर जीवनदान दिया···यह जिन्दगी लतिका की ही दी हुई है, जिसके बल पर मैं लेखक बना···।[2]

इस तरह 'रेणु' के व्यक्तित्व के निर्माण में उनकी पत्नी लतिका जी का हाथ कितना रहा है, यह स्पष्ट हो सकता है। लतिका उनके लिए मात्र प्रेरणा नहीं, लेखकीय जीवन बनाने के लिए ही नहीं बल्कि 'यह जिन्दगी लतिका की ही दी हुई है।' उपर्युक्त वक्तव्य से यह ध्वनि स्पष्ट निकलती है कि 'रेणु' विफल राजनीति और बाद में लम्बी कष्टकर बीमारी से इतने थक गये कि यह उदासी और बोझ उनकी आगामी जिन्दगी पर भी छाया रहा। जिस

---

१. रेणु की श्रेष्ट कहानियाँ, पृष्ठ १५।

२. रेणु की श्रेष्ट कहानियाँ, पृष्ठ १४-१५।

अकेलेपन को वे तब अनुभवते रहे वह अभी भी उनकी थाती है, लेकिन उनके व्यक्तित्व की एक विशेषता यह भी है कि इस अकेलेपन के बोझ के तले से हर क्षण बाहर आने को ललकते रहते हैं। यही 'मैला आंचल' के प्रशान्त ने किया और यही 'परती परिकथा' के जितेन्द्र ने।

लोक संस्कृति के चिरस्थाई रंग

'जितेन्द्र, अकेलेपन के अंधकार से बाहर निकलना चाहता है।...सांस्कृतिक जीवन पर राजनीतिक प्रभाव अवश्य पड़े हैं। किन्तु उसकी काली प्रतिच्छाया सर्वग्रास नहीं कर सका है अभी भी।...जितेन्द्र हिज़ड़ा नहीं। वह अपनी शक्ति पर फिर से विश्वास करने लगा। उसका सबसे बड़ा अपना सच हुआ है।'[1]

जितेन्द्र मनुष्य की वास्तविक अनुभूतियों और मानव सुलभ संवेदनाओं को सांस्कृतिक जीवन में ही पा सका और 'रेणु' भी अपने आंचल के सांस्कृतिक रंजन में अपने आपको डुबो चला। रेणु' का सारा साहित्य एक बहुत विशाल सांस्कृतिक उत्सव है, जिसमें मानव निश्छल और अनावृत्त होकर जीता है। सभ्यता की चौंध उस पर लबादे चढ़ाना चाहती है, लेकिन यह हर बार विजयी होता है। 'रेणु' के व्यक्तित्व में यही सह जाता—सरलता है...। वह कथा को शुद्धता के दम्भ (स्नाबरी) से उतार कर आंचलिक धरातल पर लाता है और ऐसी सहज सुगम सरलता से लाता है कि 'मैला आंचल' का हर पौधा, हर कण, अपनी सजीवता में बोल उठे...ध्वनि और गंध की छोटी से छोटी लहरी 'रेणु' की कथा में स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है, उसके पात्रों के निर्माण में कुछ अजब तरलता में घुलकर एकाकार हो जाती है...।'[2]

समदुःखसुखी

इसीलिए 'रेणु' का व्यक्तित्व एक पवित्रता से भर उठता है। वह हर प्राणी के साथ समदुःखसुख हो जाता है। कमलेश्वर के शब्दों में वह जैसे एक बड़े महाभारत की कल्पना कर रहा हो। वह अपने सच को प्रकट करना चाहता है, निर्भीक होकर उसका सत्य खुद उसके वातावरण के लिए बहुत

---

१. परती परिकथा, पृष्ठ ४४७।

२. राजेन्द्र यादव : प्रमुख स्वर : रेणु की श्रेष्ट कहानियाँ।

कटु रहा है। यह कटु सत्य उसके कृतित्व में आंचलिकता के सुन्दर और आकर्षक आवरण में प्रस्तुत हुआ है।

ख्यातिभीरू

जब रेणु का पहला उपन्यास 'मैला आंचल' १९५४ में प्रकाशित हुआ तो हिन्दी गल्प संसार में एक सनसनी फैल गई। यह एक नया दिशा-संकेत था और हमारे लिए एक सर्वथा नव्य और प्रौढ़ चीज। स्व० प्रेमचन्द के सुपुत्रों अमृतराय और श्रीपतराय को छोड़कर शायद हर रुचि और सार के लेखक आलोचक ने उसे सराहा और रेणु को मैथिल कोकिल कहा। रेणु को प्रेमचन्द का समकक्ष ग्रामीण जीवन का चित्रकार बताया गया। खुद रेणु भी शायद इससे विस्मित और घबरा गये। वे रातों रात इतने विख्यात हुए और उनका डंका हिन्दी संसार में इतना बजने लगा कि खुद उन्होंने इसकी कल्पना नहीं की थी। 'मैला आंचल' ने वास्तव में हमारे उपन्यास साहित्य को मान और मर्यादा प्रदान की और 'रेणु' को अलम्य यश प्रदान किया। नतीजे दो निकले। एक यह कि पटना में 'रेणु' के दोस्त भी दुश्मन बन गए और दूसरे यह कि वे भागते आए—इलाहाबाद जो साहित्यिक दृष्टि से अग्रपंक्ति में होते हुए भी 'रेणु' के लिए शांतिदायक शहर था। बिहार के साहित्यिक उपजीवी उनके बारे में तरह-तरह की कहानियाँ प्रचारित कर रहे थे। इलाहाबाद में भी इन्होंने उन्हें नहीं छोड़ा। यहाँ आकर वे उनकी 'सद्यः बनी हुई सम्मान प्रतिभा को खण्डित' करते थे। 'ऐसे तकलीफ देह क्षणों में वह अगर बात करता था तो पूर्णिया की···नेपाल की···वहाँ की खूबसूरती और नाद स्वर से युक्त जीवन की।'

नाद स्वर जीवी चित्रकार

नाद और स्वर—यही दो रेणु के साहित्य की दो मूल प्रेरणायें हैं—तत्व हैं। वास्तव में ये ही दो रेणु के जीवन की मूल शक्तियाँ हैं। उनमें जो कोमलता और रंग गंध के प्रति आकर्षण मिलता है यह उनके जीवन का अंग है, उनके व्यक्तित्व में समाया है, इसलिए उनकी लेखनी उतर कर उनकी शैली का रूप धारण कर लेता है। '···लोकगीत की मधुलयात्मकता उसकी हर रेखा से बोलती है।···नहीं बोलती नहीं, पाठक उसे हमेशा मन में महसूस करता है···हीरामन गाड़ी वाले की पीठ में लगती गुदगुदी की तरह और

बैलगाड़ी का यह सफर, ऐंद्रिय बोध को अनेक स्तरों पर छू-सकने वाली रूपाकृतियों और बिम्बों के बीच जाने डूब कर जाता है।'[1] इससे रेणु की शैली में एक अजीब रोमांचित सीमा आ जाती है। इसे राजेन्द्र यादव 'अज्ञेइयन' रोमांनियत कहते हैं। अज्ञेइयन इसलिए कि उसमें 'अज्ञेय' सा 'साफिस्टिकेशन' है सम्भ्रात-गहनता है। इस सम्भ्रातता के कारण 'रेणु' के व्यक्तित्व में सामन्तवादी संस्कारों की उपस्थिति का संकेत श्री कमलेश्वर ने दिया है, क्योंकि 'परती परिकथा' में वे अपनी सहानुभूति सामन्ती संस्कारों को दे देते हैं। फ्रांसीसी उपन्यासकार आनर-द-बाल्ज़ाक स्वयं सामन्ती संस्कार बद्ध थे लेकिन उनकी लेखनी सामन्तवाद के विरोध में चलती थी। इसलिए उनमें एक अन्तर्विरोध था। श्री कमलेश्वर 'रेणु' का एक रेखाचित्र खीचते हैं :—

'रेणु के नखशिख में सामन्ती स्वरूप झलकता है—विशुद्ध बिहारी सामंतशाही का प्रतिरूप है 'रेणु'। सुन्दर, सांवला, तराशा हुआ चेहरा मोहरा, बहुत सेक्सी होंठ, खुमार भरी आंखें और नर्म हाथ पैंर देखकर किसी बिहारी जमींदार का आभास होता है बातचीत में एक अजीब शालीनता और धीरज है।'[2]

साधारण : तड़क भड़क से दूर

लेकिन 'रेणु' के जीवन का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि न वे जमींदार हैं और न ही सामन्त। उनका जीवन इतनी मुश्किलों से गुजरा और इतनी प्रताड़नायें उन्होंने सही कि उन्हें जनसाधारण के सामान्य स्तर से ऊपर उठाना उनके साथ अन्याय होगा। 'रेणु' साधारण जन का कथाकार है और सामान्य बातों को लेता है अतः उसमें भले ही आकारगत सम्भ्रातता हो, वह केवल साधारण है और सामान्य जन रहना और कहलाना ही श्रेयस्कर समझना है और फिर कमलेश्वर खुद मानते हैं कि 'रेणु' लेखक में सर्वहारा है।

'रेणु' ने कुछ देर के लिए आकाशवाणी में नौकरी की लेकिन फिर वहाँ से भी उकताकर नौकरी छोड़ दी। बहुत सम्भव है कि सरकारी दफ्तरशाही और रेडियो की झूठी तड़क-भड़क और मशीनी कृतव्यावसायिकता उसे रास न आयी हो। उसके बाद से वे केवल स्वतन्त्र लेखन कर रहे हैं।

---

१. राजेन्द्र यादव : प्रमुख स्वर : रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ।

२. मेरा हमदम मेरा दोस्त—रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ।

'कभी कभी ऐसा लगता था कि रेणु भारतीय कम, नेपाली ज्यादा है। रेणु नेपाली कम बिहारी ज्यादा है, रेणु बिहारी कम, हिन्दू ज्यादा है···हिन्दू उस संकीर्ण अर्थ में नहीं जो कि साम्प्रदायिकता की गंध देता है···बल्कि अपने सर्वथा उदार और शिष्ट अर्थ में। रेणु के व्यक्तित्व में एक देशीयता है जो बहुत भली लगती है और कभी-कभी बहुत निरीह, मासूम और दकियानूसी भी। रेणु इस देशीय या जातीय जीवन में डूबा हुआ व्यक्ति है—उसमें पूरी तरह रसा बसा।'[1]

आस्था : नास्तिक युग में

रेणु एक निष्ठावान व्यक्ति है लेकिन उनकी आस्तिकता का एक अजीब रूप मिलता है। उनके उपन्यास 'परती परिकथा' में जितेन्द्र के पूर्वज छः चक्रों वाला एक मानचित्र छोड़ गए हैं। लोगों का विश्वास है कि परती पर ब्रह्म-पिशाच अपने छः चक्रों द्वारा ही परती को अधिकृत किए हुए है और उसका ऊसर इन्हीं छः चक्रों से बना और नियमित होता है। बिहार प्रदेश सिद्धों और कनफटे योगियों का केन्द्र था और कोई आश्चर्य नहीं कि गुह्य साधकों की कोई परम्परा यहाँ के जनमानस में विद्यमान हो। रेणु के धार्मिक विश्वास उनके निजी जीवन में ऐसी ही साधना के आस-पास मंडराते हों। बाल उन्होंने लम्बे लटकाए हैं। कर्मकाण्ड की पूरी साधना साधते हैं और अर्धरात्रि में कुक्कुट की बलि देते हैं। एक घटना का उल्लेख कमलेश्वर जी करते हैं :

'मौका तो मुझे याद नहीं, पर एक दिन पता लगा था कि रेणु साधना में लीन है और सिद्धि के लिए कर्मकाण्ड का पूरा आयोजन कर कुशासन पर आसीन है और अर्धरात्रि में कुक्कुट की बलि देगा···।'

यह तो खैर निजी विचारों और मान्यताओं की बात है लेकिन इतना अवश्य है कि 'रेणु' की दृढ़ आस्था है। वे अपने और अपने अहं के प्रति आश्वस्त है, आस्थावान है। यह आस्था उनकी कृति में भी प्रकट होती है और उनके निजी जीवन में भी। इस आस्थाहीन युग में कोई भी आस्था होना कितनी सौभाग्यपूर्ण कहें या सुखद, आश्चर्य की बात है।

———

१. मेरा हमदम मेरा दोस्त—रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ।

सहायक ग्रन्थ-सूची

हिन्दी, संस्कृत

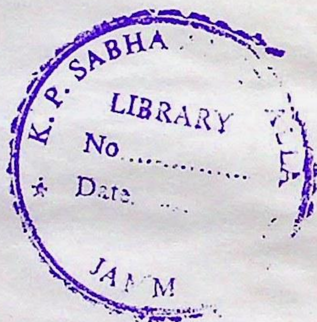
१. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास ।
२. दशकुमार चरित ।
३. इक्कीस कहानियां ।
४. प्रेमचन्द और उनकी कहानी कला ।
५. हिन्दी कहानी और कहानीकार ।
६. विपथगा ।
७. कहानी का रचना विधान ।
८. काव्य के रूप ।
९. नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति ।
१०. संस्कृत साहित्य का इतिहास ।
११. हिन्दी उपन्यास ।
१२. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन ।
१३. जातक, प्रथम खण्ड ।
१४. ढोला मारू रा दूहा ।
१५. माधवानल कामकंदला ।
१६. मैला आंचल ।
१७. परती परिकथा ।
१८. फणीश्वरनाथ रेणु की श्रेष्ठ कहानियां ।
१९. ठुमरी ।
२०. हाथ का जस, बाक का सत्त ।
२१. जुलूस ।
२२. कितने चौराहे ।
२३. दीर्घतया ।
२४. कहानी कला : विकास और सिद्धांत ।
२५. किनारे से किनारे तक ।

ENGLISH :

1. An Introduction to the study of Literature.
2. Encyclopaedia Britannica, vol. XXI.
3. The Works of Edgar Allen Poe.
4. The Quest for Literature.
5. Novel and Poetry.
6. The short story.
7. Aspects of a Novel.
8. A Manual of short story art.
9. Classical Sanskrit Literature.
10. A Descriptive Catalogue of Bardic and Historical.
11. Manuscripts, section I part I.
12. Linguistic Survey of India.
13. The Formation of Maithili Language.

पत्रिकाएं :

१. कहानी : विशेषांक १९५८ ।
२. नई कहानियां : मार्च १९६६ ।
३. लहर : अक्तूबर १९६६ ।
४. नई कहानियां : विदेशी कहानी विशेषांक, मई १९६४ ।
५. आलोचना—३४ ।
६. नई कहानियां—दिसम्बर १९६४ ।
७. कल्पना—१६१ ।
८. क ख ग—जुलाई १९६४ ।


K. P. SABHA
LIBRARY
No
Date
JAMM